

## CHAPTER दस भक्त शिरोमणि प्रह्लाद

इस अध्याय में वर्णन किया गया है कि प्रह्लाद महाराज को प्रसन्न करने के बाद भगवान् नृसिंहदेव किस तरह अन्तर्धान हो गये। इसमें शिवजी द्वारा प्रदत्त वर का भी उल्लेख है।

नृसिंहदेव प्रह्लाद महाराज को एक-एक करके अनेक वरदान देना चाह रहे थे, किन्तु उन्हें आध्यात्मिक प्रगति में बाधक सोचकर प्रह्लाद महाराज ने एक भी वर स्वीकार नहीं किया। उल्टे उन्होंने अपने को भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह समर्पित कर दिया। उन्होंने कहा “यदि भगवान् की भक्ति में लगा रहने वाला मनुष्य निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए प्रार्थना करता है, तो वह शुद्ध भक्त क्या भक्त भी नहीं कहला सकता। उसे ऐसा व्यापारी ही कहा जा सकता है, जो लेन-देन के व्यापार में लगा रहता है। इसी प्रकार, जो स्वामी अपने सेवक से सेवा कराकर उसे प्रसन्न करना चाहता है, वह भी असली स्वामी नहीं है।” अतएव प्रह्लाद महाराज ने भगवान् से कोई याचना नहीं की, प्रत्युत उन्होंने कहा कि यदि भगवान् उन्हें वर देना ही चाहते हैं, तो वे उन्हें यह विश्वास दिला दें कि वे भौतिक इच्छाओं के लिए कोई वर माँगने को नहीं प्रेरित नहीं करेंगे। कामेच्छाओं के बदले भक्ति का विनिमय सदैव प्रधान बना रहता है। ज्योंही कामेच्छाएँ जाग्रत हो उठती हैं त्योंही मनुष्य की इन्द्रियाँ, मन, जीवन, आत्मा, धर्म, धैर्य, बुद्धि, शर्म, सौन्दर्य, बल, स्मृति तथा सत्यनिष्ठा सभी विलुप्त हो जाते हैं। मनुष्य तभी अनन्य भक्ति कर सकता है जब उसके मन में भौतिक इच्छाएँ न हों।

प्रह्लाद महाराज की अनन्य भक्ति से भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हुए फिर भी उन्होंने एक भौतिक वरदान दिया कि वे इस जगत में पूर्णतया सुखी रहेंगे और अगले जीवन में वैकुण्ठ में निवास करेंगे। उन्होंने यह भी वरदान दिया कि वे *मन्वन्तर* के अन्त तक इस जगत के राजा रहेंगे, उन्हें भगवान् की महिमा का श्रवण करने की सुविधा प्राप्त होती रहेगी और वे कल्मषहीन भक्तियोग द्वारा भगवान् की सेवा करते हुए उन्हीं पर पूरी तरह आश्रित रहेंगे। भगवान् ने प्रह्लाद को उपदेश दिया कि वे भक्तियोग के द्वारा यज्ञ सम्पन्न करें, क्योंकि यह राजा का कर्तव्य है।

प्रह्लाद महाराज ने भगवान् द्वारा प्रदत्त सब कुछ स्वीकार कर लिया और उनसे अपने पिता का उद्धार करने के लिए प्रार्थना की। इस प्रार्थना के बदले भगवान् ने उन्हें आश्चस्त किया कि जिस परिवार में उनके समान शुद्ध भक्त उत्पन्न हो उस भक्त का न केवल पिता, अपितु उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ मुक्त हो

जाती हैं। भगवान् ने प्रह्लाद से यह भी कहा कि वे अपने पिता की मृत्यु के बाद समुचित कर्मकाण्ड सम्पन्न करें।

तब वहाँ पर उपस्थित ब्रह्माजी ने भगवान् की अनेक प्रकार की स्तुति की और कृतज्ञता प्रकट की कि उन्होंने प्रह्लाद महाराज को ऐसा वरदान दिया है। भगवान् ने ब्रह्माजी को सलाह दी कि वे असुरों को उस तरह वरदान न दें जैसाकि उन्होंने हिरण्यकशिपु को दिया था क्योंकि ऐसे वरों से वे आसक्त हो जाते हैं। तब नृसिंहदेव अन्तर्धान हो गये। उसी दिन ब्रह्मा तथा शुक्राचार्य द्वारा प्रह्लाद महाराज विश्व के सिंहासन पर बिठाये गये।

इस तरह नारद मुनि ने युधिष्ठिर महाराज से प्रह्लाद महाराज का चरित्र कह सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् रामचन्द्र द्वारा रावण वध तथा द्वापर युग में शिशुपाल तथा दन्तवक्र के वध का वर्णन किया। शिशुपाल भगवान् में लीन हो गया था और उसे सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई थी। नारद मुनि ने युधिष्ठिर महाराज की प्रशंसा की, क्योंकि भगवान् कृष्ण पाण्डवों के सुहृद तथा मित्र थे और सदैव उनके घर में रुका करते थे। इस तरह पाण्डवों का भाग्य प्रह्लाद महाराज से बढ़कर था।

बाद में नारद मुनि ने बताया कि मय-दानव ने किस तरह उन असुरों के लिए त्रिपुर की रचना की जिन्होंने अत्यन्त बलशाली बन कर देवताओं को हराया। इस हार के कारण रुद्र या शिव ने त्रिपुर को ध्वस्त कर दिया जिसके कारण वे त्रिपुरारि के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसी कारण से रुद्र देवताओं द्वारा अत्यन्त प्रशंसित तथा पूजित हैं। यह कथा इस अध्याय के अन्त में आती है।

श्रीनारद उवाच

भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयार्भकः ।

मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारद मुनि ने कहा; भक्ति-योगस्य—भक्ति के नियमों का; तत्—वे ( नृसिंहदेव द्वारा दिये गये वर ); सर्वम्—उनमें से प्रत्येक; अन्तरायतया—अवरोध के होने से ( भक्तियोग के पथ पर ); अर्भकः—बालक रूप प्रह्लाद महाराज; मन्यमानः—मानते हुए; हृषीकेशम्—नृसिंहदेव को; स्मयमानः—मुसकाते हुए; उवाच—कहा; ह—भूतकाल का सूचक।

नारद मुनि ने आगे कहा : यद्यपि प्रह्लाद महाराज बालक थे किन्तु जब उन्होंने नृसिंहदेव द्वारा दिये गये वरों को सुना तो उन्होंने इन्हें भक्ति के मार्ग में अवरोध समझा। तब वे विनीत भाव से मुसकाये और इस तरह बोले।

**तात्पर्य :** भक्ति का परम लक्ष्य भौतिक उपलब्धियाँ नहीं है, अपितु ईश-प्रेम है। इसलिए प्रह्लाद महाराज, ध्रुव महाराज, अम्बरीष महाराज, युधिष्ठिर महाराज तथा अनेक भक्त राजाओं ने अत्यन्त ऐश्वर्यवान् होते हुए भी भगवान् की सेवा में इस ऐश्वर्य को लगाया, अपनी इन्द्रिय-तृप्ति में नहीं। निस्सन्देह, भौतिक ऐश्वर्य का स्वामित्व सदैव भयावह है क्योंकि भौतिक ऐश्वर्य के वशीभूत होकर मनुष्य भक्ति से पथभ्रष्ट हो सकता है। तो भी शुद्ध भक्त कभी भी भौतिक ऐश्वर्य से भ्रमित नहीं होता ( *अन्याभिलाषिता शून्यम्* )। उल्टे, उसके पास जो कुछ भी रहता है उसे वह शत-प्रतिशत भगवान् की सेवा में लगाता है। जब कोई भौतिक सम्पत्ति से आकृष्ट होता है, तो इस सम्पत्ति को माया द्वारा प्रदत्त माना जाता है, किन्तु जब वह इस सम्पत्ति का पूरा उपयोग सेवा में करता है, तो उसे ईश्वर का उपहार या भक्ति को सम्बर्धित करने के लिए कृष्ण-प्रदत्त सुविधा माना जाता है।

श्रीप्रह्लाद उवाच

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तंकामेषु तैर्वैः ।  
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-प्रह्लादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने ( भगवान् से ) कहा; मा—मत; माम्—मुझको; प्रलोभय—लालच दीजिए; उत्पत्त्या—मेरे जन्म के कारण ( असुर कुल में ); सक्तम्—( मैं पहले से ही ) अनुरक्त; कामेषु—भौतिक भोग में; तैः—उन सभी; वैः—भौतिक सम्पत्ति के वरों द्वारा; तत्-सङ्ग-भीतः—ऐसी भौतिक संगति से डर कर; निर्विण्णः—भौतिक इच्छाओं से पूर्णतया विरक्त होकर; मुमुक्षुः—भौतिक जीवन से मुक्त होने का इच्छुक; त्वाम्—आपके चरणकमलों में; उपाश्रितः—मैंने शरण ले ली है।

प्रह्लाद महाराज ने आगे कहा : हे प्रभु, हे भगवान्, नास्तिक परिवार में जन्म लेने के कारण मैं स्वभावतः भौतिक भोग के प्रति अनुरक्त हूँ; अतएव आप मुझे इन मोहों से मत ललचाइये। मैं भौतिक दशाओं से अत्यधिक भयभीत हूँ और भौतिकतावादी जीवन से मुक्त होने का इच्छुक हूँ। यही कारण है कि मैंने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की है।

**तात्पर्य :** भौतिकतावादी जीवन का अर्थ है शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु से आसक्ति। यह आसक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए कामेच्छा पर और वह भी विशेष रूप से मैथुनसुख पर आधारित है। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः*—जब मनुष्य भौतिक भोग के प्रति अत्यधिक आसक्त रहता है, तो उसका सारा ज्ञान जाता रहता है ( *हृतज्ञानाः* )। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जो लोग भौतिक भोग के प्रति आसक्त होते हैं, वे विविध भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए देवताओं की पूजा करते हैं। वे देवी दुर्गा

तथा शिवजी की पूजा के प्रति विशेष अनुरक्त रहते हैं, क्योंकि यह दिव्य दम्पति अपने भक्तों को समस्त भौतिक ऐश्वर्य प्रदान कर सकता है। लेकिन प्रह्लाद महाराज समस्त भौतिक भोग से विरक्त थे, अतएव उन्होंने नृसिंहदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण की, किसी अन्य देवता के चरण कमल की नहीं। यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि यदि कोई इस भौतिक जगत से, तीनों तापों से तथा *जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि* से छूटना चाहता है, तो उसे भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि भगवान् की शरण के बिना भौतिकतावादी जीवन से मुक्ति सम्भव नहीं है। नास्तिक लोग भौतिक भोग के प्रति अत्यधिक आसक्त होते हैं, अतएव यदि उन्हें भौतिक भोग का अधिक से अधिक अवसर मिलता है, वे उसे ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु प्रह्लाद महाराज इस ओर से अत्यन्त सतर्क थे। यद्यपि उनका जन्म भौतिकतावादी पिता से हुआ था, किन्तु भक्त होने के कारण उन्हें कोई भौतिक इच्छा न थी (*अन्याभिलाषिताशून्यम्*)।

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ।  
भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

भृत्य-लक्षण-जिज्ञासुः—शुद्ध भक्त के लक्षण प्रकट करने का इच्छुक; भक्तम्—भक्त को; कामेषु—भौतिक जगत में, जहाँ कामेच्छाएँ प्रधान हैं; अचोदयत्—भेजा; भवान्—आपने; संसार-बीजेषु—इस जगत में उपस्थित रहने का मूल कारण; हृदय-ग्रन्थिषु—( भौतिक सुख की इच्छाएँ ) जो समस्त बद्धजीवों के हृदयों के भीतर हैं; प्रभो—हे पूज्य भगवान्!।

हे मेरे अराध्य देव, चूँकि हर एक के हृदय में भौतिक संसार के मूल कारण कामेच्छाओं का बीज रहता है, अतएव आपने मुझे इस भौतिक जगत में शुद्ध भक्त के लक्षण प्रकट करने के लिए भेजा है।

**तात्पर्य :** भक्तिरसामृत-सिन्धु में नित्यसिद्ध तथा साधनसिद्ध भक्तों के विषय में पर्याप्त चर्चा दी हुई है। नित्यसिद्ध भक्त इस संसार में अपने-उदाहरण द्वारा भक्त बनने की शिक्षा देने के लिए वैकुण्ठलोक से आते हैं। इस जगत के जीव ऐसे भक्तों से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और इसतरह भगवद्धाम जाने में रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। नित्यसिद्ध भक्त भगवान् के आदेश से वैकुण्ठलोक से आता है और अपने उदाहरण द्वारा यह दिखलाता है कि किस तरह शुद्ध भक्त बना जाये (*अन्याभिलाषिता शून्यम्*)। इस जगत में आने पर भी नित्यसिद्ध भक्त भौतिक भोग के प्रलोभनों में नहीं आता। इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण महाभागवत भक्त प्रह्लाद महाराज हैं, जो नित्यसिद्ध थे। यद्यपि उनका जन्म नास्तिक

हिरण्यकशिपु के परिवार में हुआ था, किन्तु वे किसी तरह के भौतिक भोग के प्रति आसक्त नहीं थे। भगवान् चाहते थे कि प्रह्लाद महाराज शुद्ध भक्त के लक्षण प्रकट करें, अतएव उन्हें भौतिक वर स्वीकार करने के लिए फुसलाना चाहा, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उल्टे, उन्होंने अपने निजी उदाहरण से शुद्ध भक्त के लक्षण प्रकट किये। दूसरे शब्दों में, भगवान् न तो स्वयं अपने भौतिक शुद्ध भक्त को इस भौतिक संसार में भेजना चाहते हैं, न ही भक्त को यहाँ आने में कोई भौतिक प्रयोजन रहता है। जब भगवान् स्वयं इस जगत में अवतार के रूप में आते हैं, तो वे भौतिक परिवेश से आकृष्ट नहीं होते और उन्हें भौतिक कार्य से कोई मतलब नहीं रहता फिर भी वे अपने निजी उदाहरण से सामान्य व्यक्ति को भक्त बनना सिखाते हैं। इसी प्रकार जो भक्त भगवान् के आदेश से यहाँ आता है, वह भी अपने निजी आचरण से दिखाता है कि शुद्ध भक्त कैसे बना जाए। इसलिए शुद्ध भक्त सभी जीवों के लिए, जिनमें ब्रह्मा भी सम्मिलित हैं, व्यावहारिक उदाहरण होता है।

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यथा—और कुछ; ते—तुम्हारा; अखिल-गुरो—हे समस्त सृष्टि के परम शिक्षक; घटेत—ऐसा हो सकता है; करुणा-आत्मनः—परम पुरुष जो अपने भक्तों पर अत्यन्त दयालु हैं; यः—जो व्यक्ति; ते—तुमसे; आशिषः—भौतिक लाभ; आशास्ते—इच्छा करता है (आपकी सेवा करने के बदले में); न—नहीं; सः—ऐसा व्यक्ति; भृत्यः—सेवक; सः—ऐसा व्यक्ति; वै—निस्सन्देह; वणिक्—व्यापारी (जो अपने व्यापार से लाभ उठाना चाहता है)।

अन्यथा हे भगवान्, हे समस्त जगत के परम शिक्षक, आप अपने इस भक्त के प्रति इतने दयालु हैं कि आपने उससे कुछ भी ऐसा करने को प्रेरित नहीं किया जो उसके लिए अलाभकारी हो। दूसरी ओर, जो व्यक्ति आपकी भक्ति के बदले में कुछ भौतिक लाभ चाहता है, वह आपका शुद्ध भक्त नहीं हो सकता। वह उस व्यापारी की तरह ही है, जो सेवा के बदले में लाभ चाहता है।

तात्पर्य : कभी-कभी यह देखा जाता है कि कोई व्यक्ति किसी भक्त के पास या भगवान् के मन्दिर में किसी भौतिक लाभ की प्राप्त करने के लिए आता है। ऐसे व्यक्ति को यहाँ पर वणिक कहा गया है। भगवद्गीता में आर्तो जिज्ञासुरार्थार्थी का वर्णन है। आर्त शारीरिक दृष्टि से पीड़ित व्यक्ति को सूचित करने वाला है और अर्थार्थी धन चाहने वाले को। ऐसे व्यक्ति अपने दुख को दूर करने या धन प्राप्त

करने के लिए भगवान् से आशीर्वाद लेने के लिए उनके पास जाने को प्रेरित किए जाते हैं। उन्हें सुकृती या पवित्र कहा गया है, क्योंकि वे दुख पड़ने या धन की आवश्यकता होने पर परमेश्वर के पास पहुँचते हैं। बिना पवित्र हुए कोई भगवान् के पास तक नहीं पहुँच सकता। भले ही ऐसा सुकृती कुछ भौतिक लाभ पा ले, किन्तु जो भौतिक लाभ का इच्छुक रहता है, वह शुद्ध भक्त नहीं हो सकता। जब शुद्ध भक्त को भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है, तो वह उसके पवित्र कार्य के कारण नहीं अपितु भगवान् की सेवा के कारण होता है। भगवान् की सेवा करने पर व्यक्ति स्वतः पवित्र बन जाता है, अतएव शुद्ध भक्त अन्याभिलाषिताशून्यम् होता है। उसे न तो भौतिक लाभ की इच्छा रहती है, न ही भगवान् उसे भौतिक लाभ का प्रलोभन देते हैं। जब भक्त को किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, तो भगवान् उसकी पूर्ति करते हैं (योगक्षेमं वहाम्यहम्)।

कभी-कभी भौतिकतावादी लोग भगवान् को फल-फूल चढ़ाने मन्दिर में जाते हैं, क्योंकि उन्होंने भगवद्गीता से सीख रखा है कि यदि भक्त कुछ फल-फूल अर्पित करता है, तो भगवान् उन्हें स्वीकार करते हैं। भगवद्गीता (९.२६) में भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि कोई प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझे एक पत्ती, एक फूल या जल भी अर्पित करता है, तो मैं उसे ग्रहण करूँगा।” इस तरह व्यावसायिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सोचता है कि यदि उसे फूल चढ़ाने मात्र से कुछ लाभ हो सके—जैसे कि उसे प्रचुर धन मिल सके—तो यह अच्छा सौदा हो। ऐसे व्यक्तियों को शुद्ध भक्त नहीं माना जाता। चूँकि उनकी इच्छाएँ शुद्ध नहीं होतीं, अतएव भक्त होने का दिखावा करने के लिए मन्दिर में जाने पर भी वे व्यापारी ही बने रहते हैं। सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्—जब कोई भौतिक इच्छाओं से पूरी तरह मुक्त हो जाता है तभी वह शुद्ध हो सकता है और उसी शुद्ध अवस्था में वह भगवान् की सेवा कर सकता है। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते। यही शुद्ध भक्ति-पद है।

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।

न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्त्यो राति चाशिषः ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**

आशासानः—( सेवा के बदले ) इच्छाएँ रखने वाला व्यक्ति; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; भृत्यः—योग्य सेवक या भगवान् का शुद्ध भक्त; स्वामिनि—स्वामी से; आशिषः—भौतिक लाभ; आत्मनः—अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए; न—न तो; स्वामी—स्वामी, प्रभु; भृत्यतः—सेवक से; स्वाम्यम्—स्वामी होने के श्रेष्ठ पद से; इच्छन्—चाहते हुए; यः—ऐसा स्वामी जो; राति—प्रदान करता है; च—भी; आशिषः—भौतिक लाभ।

जो सेवक अपने स्वामी से भौतिक लाभ की इच्छा रखता है, वह निश्चय ही योग्य सेवक या शुद्ध भक्त नहीं है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने सेवक को इसलिए आशीष देता है कि स्वामी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे, वह भी शुद्ध स्वामी नहीं है।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—जिनके मन भौतिक इच्छाओं द्वारा मलिन हो चुके हैं, वे देवताओं की शरण में जाते हैं। देवता कभी स्वामी नहीं बन सकता, क्योंकि स्वामी तो भगवान् हैं। इसलिए देवतागण अपना सम्मानित पद बनाये रखने के लिए अपने पूजकों को मनवांछित आशीष देते रहते हैं। उदाहरणार्थ, एक समय एक असुर ने शिवजी से यह वरदान प्राप्त किया कि वह जिसके सिर पर अपना हाथ रख दे वह मर जाये। ऐसे वरदान देवताओं से प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु यदि कोई भगवान् की पूजा करता है, तो वे कभी ऐसे गर्हित वरदान नहीं देंगे। इसके विपरीत, श्रीमद्भागवत (१०.८८.८) में कहा गया है—*यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः*। यदि कोई भौतिकतावादी होने के साथ-साथ परमेश्वर का दास बनना चाहता है, तो भगवान् अपने भक्त पर परम अनुकम्पा करके उसका सारा भौतिक ऐश्वर्य हर लेते हैं और बाध्य कर देते हैं कि वह भगवान् का शुद्ध भक्त बन जाए। प्रह्लाद महाराज शुद्ध भक्त तथा शुद्ध स्वामी का अन्तर बताते हैं। भगवान् शुद्ध स्वामी या परम स्वामी हैं जबकि निष्काम अनन्य भक्त शुद्ध सेवक है। भौतिकतावादी प्रवृत्ति का व्यक्ति सेवक नहीं बन सकता और जो अपने सेवक पर अपनी रोब दिखाने के लिए व्यर्थ ही आशीष देता रहता है, वह असली स्वामी नहीं है।

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।

नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

अहम्—जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है; तु—निस्सन्देह; अकामः—निष्काम; त्वत्-भक्तः—निष्काम भाव से आपके प्रति पूर्णतया आसक्त; त्वम् च—आप भी; स्वामी—असली मालिक; अनपाश्रयः—निष्काम भाव से ( सकाम होने पर आप स्वामी नहीं बन सकते ); न—नहीं; अन्यथा—सेवक-सेव्य जैसे सम्बन्ध के बिना; इह—यहाँ; आवयोः—हमारा; अर्थः—किसी स्वार्थ के

( भगवान् शुद्ध स्वामी हैं और प्रह्लाद महाराज निःस्वार्थ शुद्ध भक्त हैं ); राज—राजा; सेवकयोः—तथा सेवक के; इव—सदृश ( जिस तरह राजा सेवक के लाभ हेतु कर लेता है या जनता राजा हेतु कर देती है )।

हे प्रभु, मैं आपका निःस्वार्थ सेवक हूँ और आप मेरे नित्य स्वामी हैं। सेवक तथा स्वामी होने के अतिरिक्त हमें कुछ भी नहीं चाहिए। आप प्राकृतिक रूप से मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। हम दोनों में कोई अन्य सम्बन्ध नहीं है।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा था—जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्य दास'—प्रत्येक जीव भगवान् कृष्ण का शाश्वत दास है। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (५.२९) में कहते हैं—भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्—मैं सभी लोकों का स्वामी और परम भोक्ता हूँ। भगवान् की यह स्वाभाविक स्थिति है और जीव की स्वाभाविक स्थिति है कि वह उनकी शरण में जाये ( सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज )। यदि यह सम्बन्ध बना रहता है, तो स्वामी तथा सेवक के मध्य शाश्वत तथा वास्तविक सुख बना रहता है। दुर्भाग्यवश जब यह शाश्वत सम्बन्ध गड़बड़ा जाता है, तो जीव अलग रहते हुए सुखी बनना चाहता है और अपने स्वामी को अपना आदेशपालक समझ लेता है। इस तरह से सुख नहीं मिल सकता। स्वामी को भी चाहिए कि वह अपने सेवक की इच्छाएँ पूरी न करता रहे। यदि वह ऐसा करता है, तो वह असली स्वामी नहीं है। असली स्वामी तो वह आदेश देता है "तुम्हें यह करना है" और असली सेवक तुरन्त आदेश का पालन करता है। जब तक परमेश्वर एवं अधीनस्थ जीव के मध्य ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाता, तब तक असली सुख नहीं मिल सकता। जीव तो आश्रय है—सदैव अधीन—और भगवान् विषय हैं अर्थात् परम जीवन लक्ष्य हैं। दुर्भाग्यवश इस जगत में फँसे हुए लोग इसे नहीं जानते। न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्—भौतिक शक्ति द्वारा मोहित होने से इस जगत का प्रत्येक जीव अचेत रहता है कि जीवन का एकमात्र लक्ष्य भगवान् विष्णु के पास जाना है।

*आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम् ।*

*तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥*

पद्मपुराण में शिवजी अपनी पत्नी पार्वती अर्थात् देवी दुर्गा को बताते हैं कि जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है और वे तभी प्रसन्न हो सकते हैं जब उनका दास प्रसन्न होता है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु शिक्षा देते हैं—गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः । मनुष्य को दास



का भी दास होना चाहिए। प्रह्लाद महाराज ने भी भगवान् नृसिंहदेव से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपने सेवक बना लें। भक्ति की यह निर्धारित विधि है। ज्योंही भक्त भगवान् को अपना आदेशवाहक बनाना चाहता है त्योंही भगवान् ऐसे स्वार्थी भक्त का स्वामी बनने से इनकार कर देते हैं। *भगवद्गीता* (४.११) में भगवान् कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—जो जिस तरह मेरी शरण ग्रहण करता है उसी के अनुसार मैं उसे पुरस्कार प्रदान करता हूँ। भौतिकतावादी व्यक्ति सामान्यतया भौतिक लाभ की ओर प्रवृत्त होते हैं। जब तक व्यक्ति ऐसी दूषित अवस्था में रहता है तब तक उसे भगवद्धाम वापस जाने का लाभ नहीं मिल पाता।

यदि दास्यसि मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ ।

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

यदि—यदि; दास्यसि—देना चाहते हैं; मे—मुझको; कामान्—इच्छित वस्तु; वरान्—अपने आशीर्वाद के रूप में; त्वम्—तुम; वरद-ऋषभ—हे भगवान् आप कोई भी वर दे सकते हैं; कामानाम्—भौतिक सुख की सारी इच्छाओं का; हृदि—अपने हृदय के भीतर; असंरोहम्—वृद्धि का न होना; भव तः—आपसे; तु—तब; वृणे—प्रार्थना करता हूँ; वरम्—ऐसे वरदान के लिए।

हे सर्वश्रेष्ठ वरदाता स्वामी, यदि आप मुझे कोई वांछित वर देना ही चाहते हैं, तो मेरी आपसे

प्रार्थना है कि मेरे हृदय में किसी प्रकार की भौतिक इच्छाएँ न रहें।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें शिक्षा दी है कि भगवान् से किस प्रकार वरदान के लिए प्रार्थना की जाये। उन्होंने कहा—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवतात् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

“हे प्रभु! न तो मैं सम्पत्ति चाहता हूँ, न अनेक अनुयायी, न सुन्दर स्त्री, क्योंकि ये सभी भौतिकतावादी इच्छाएँ हैं। किन्तु यदि मुझे आपसे कोई वरदान माँगना ही हो तो मेरी प्रार्थना है कि मैं चाहे जिस किसी जीवन में जन्म ग्रहण करूँ, प्रत्येक दशा में मैं आपकी दिव्य भक्ति से विहीन न होऊँ।” भक्तगण उन मायावादियों की तुलना में सदैव लाभप्रद स्थिति में रहते हैं, जो प्रत्येक वस्तु को निराकार या शून्य बना देना चाहते हैं। कोई भी मनुष्य शून्यवादी नहीं रह सकता है, उसके पास कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए। अतएव भक्त सदैव कुछ-न-कुछ रखना चाहता है और इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रह्लाद महाराज इस प्रकार करते हैं “यदि मुझे आपसे कोई वरदान लेना ही है, तो मेरी

प्रार्थना है कि मेरे हृदय में कोई भौतिक इच्छा न रह जाये।” भगवान् की सेवा करने की इच्छा लेशमात्र भी भौतिक नहीं है।

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।

हीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥

**शब्दार्थ**

इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; मनः—मन; प्राणः—प्राण; आत्मा—शरीर; धर्मः—धर्म; धृतिः—धैर्य; मतिः—बुद्धि; हीः—लज्जा; श्रीः—ऐश्वर्य; तेजः—बल; स्मृतिः—स्मरण शक्ति; सत्यम्—सत्य; यस्य—जिसकी कामेच्छाएँ; नश्यन्ति—विनष्ट हो जाती हैं; जन्मना—जन्म से ही।

हे भगवान्, जन्म काल से ही कामेच्छाओं के कारण मनुष्य की इन्द्रियों के कार्य, मन, जीवन, शरीर, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, ऐश्वर्य, बल, स्मृति तथा सत्यनिष्ठा समाप्त हो जाते हैं।

**तात्पर्य :** श्रीमद्भागवत में कहा गया है *कामं हद्रोगम्*। भौतिकतावादी जीवन का अर्थ ही होता है कि मनुष्य कामेच्छा नामक भयंकर रोग से पीड़ित है। मुक्ति का अर्थ है कामेच्छा से मुक्त होना, क्योंकि ऐसी इच्छा के कारण ही मनुष्य को बारम्बार जन्म तथा मृत्यु स्वीकार करनी पड़ती है। जब तक उसकी कामेच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं, तब तक वह उन्हें पूरी करने के लिए बारम्बार जन्म लेता है। अतएव भौतिक इच्छाओं के कारण ही मनुष्य विभिन्न कार्य करता है और विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करके कभी न तुष्ट होने वाली इच्छाओं को पूरी करने का प्रयास करता है। इसकी एकमात्र औषधि है भक्ति में लग जाना जो समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने पर प्रारम्भ होती है। *अन्याभिलाषिताशून्यम्*। *अन्य-अभिलाषिता* का अर्थ “भौतिक इच्छा” और *शून्यम्* का अर्थ है “से मुक्त।” आध्यात्मिक जीव के कार्यकलाप आध्यात्मिक होते हैं और इच्छाएँ भी आध्यात्मिक होती हैं, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वर्णन किया है—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहेतुकी त्वयि*। भगवान् की अनन्य भक्ति ही एकमात्र आध्यात्मिक इच्छा है। किन्तु इस इच्छा को पूरा करने के लिए मनुष्य को समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। इच्छारहित का अर्थ है भौतिक इच्छाओं से मुक्ति। श्रील रूप गोस्वामी ने इसे *अन्याभिलाषिताशून्यम्* कहा है। जैसे ही मनुष्य में भौतिक इच्छाएं उत्पन्न होती हैं, उसकी आध्यात्मिक पहचान समाप्त हो जात है। तब जीवन का सारा साज-सामान जिसमें मनुष्य की इन्द्रियाँ, शरीर, धर्म, धैर्य तथा बुद्धि सम्मिलित हैं, मूल कृष्णचेतना से विपथ हो जाता है। भौतिक इच्छाओं के उदय होते ही मनुष्य अपनी इन्द्रियों का तथा बुद्धि का उपयोग भगवान् की तुष्टि के लिए सही ढंग से

नहीं कर पाता। मायावादी विचारक निर्विशेष, संज्ञाहीन तथा मनरहित बनना चाहते हैं, किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। जीव को जीवित रहना ही पड़ता है, सदैव इच्छाओं-आकांक्षाओं आदि से युक्त होकर। किन्तु इन्हें शुद्ध बनाना चाहिए जिससे मनुष्य भौतिक कल्मश के बिना आध्यात्मिक रूप से आकांक्षा कर सके। प्रत्येक जीव में ये प्रवृत्तियाँ रहती हैं, क्योंकि वह सजीव है। किन्तु भौतिकता से कलुषित होने पर वह भौतिक विपत्ति के हाथों में चला जाता है ( *जन्ममृत्युजराव्याधि* )। यदि मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र से बचना चाहता है, तो उसे भगवान् की भक्ति ग्रहण करनी चाहिए—

*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।*

*हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ॥*

“भक्ति का अर्थ है अपनी समस्त इन्द्रियों को इन्द्रियों के स्वामी भगवान् की सेवा में लगाना। जब आत्मा परमेश्वर की सेवा करता है, तो उसके दो अतिरिक्त प्रभाव होते हैं—एक तो वह समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और दूसरा यह कि भगवान् की सेवा में लगने मात्र से ही मनुष्य की इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं।”

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।  
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

विमुञ्चति—छोड़ देता है; यदा—जब भी; कामान्—समस्त भौतिक इच्छाओं को; मानवः—मानव समाज; मनसि—मन के भीतर; स्थितान्—स्थित; तर्हि—तभी; एव—निस्सन्देह; पुण्डरीक-अक्ष—हे कमलनयन भगवान्; भगवत्त्वाय—भगवान् के समान ही ऐश्वर्यवान होने का; कल्पते—पात्र बनता है।

हे प्रभु, जब मनुष्य अपने मन से सारी भौतिक इच्छाएँ निकालने में सक्षम हो जाता है, तो वह आपके ही समान सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य का पात्र बन जाता है।

तात्पर्य : कभी-कभी नास्तिक लोग भक्त की आलोचना यह कह कर करते हैं “यदि तुम भगवान् से वरदान लेना नहीं चाहते और यदि भगवान् का सेवक भगवान् के ही समान ऐश्वर्यवान् है, तो फिर तुम भगवान् के सेवक बने रहने का वरदान क्यों माँगते हो?” श्रीधर स्वामी की टीका है— *भगवत्त्वाय भगवत् समान ऐश्वर्याय। भगवत्त्व* अर्थात् भगवान् के ही समान होने का अर्थ भगवान् से तादात्म्य या उनके समान होना नहीं है, यद्यपि आध्यात्मिक जगत में सेवक स्वामी के समान ही ऐश्वर्यवान् होता है। भगवान् का सेवक दास, मित्र, पिता, माता या प्रेमी के रूप में भगवान् की सेवा में लगा रहता है और

ये सभी भगवान् के ही समान ऐश्वर्यवान् होते हैं। यही अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व है। सेवक तथा स्वामी भिन्न होते हुए भी ऐश्वर्य में समान हैं। भगवान् से एकसाथ भिन्नता तथा एकत्व का यही अर्थ है।

ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ।  
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

ॐ—हे भगवान्; नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; भगवते—परम पुरुष को; तुभ्यम्—तुम्हें; पुरुषाय—परम पुरुष को; महा-  
आत्मने—परमात्मा को; हरये—भक्तों के समस्त दुखों को हरने वाले भगवान् को; अद्भुत-सिंहाय—आपके अद्भुत सिंह रूप  
नृसिंहदेव को; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; परम-आत्मने—परमात्मा को।

हे षड्ऐश्वर्यवान् प्रभु, हे परम पुरुष, हे परमात्मा, हे समस्त दुखों के विनाशक, हे अद्भुत  
नृसिंह रूप में परम पुरुष, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में प्रह्लाद महाराज ने बतलाया कि भक्त भगवत्त्व को प्राप्त कर सकता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने दास पद को खो देता है। भगवान् के शुद्ध दास को, भले ही वह भगवान् के ही समान ऐश्वर्यवान् क्यों न हो, भगवान् को सादर नमस्कार करना होता है। प्रह्लाद महाराज भगवान् को शान्त करने में लगे थे, अतएव वे अपने को भगवान् के तुल्य नहीं मान रहे थे। उन्होंने अपनी स्थिति दास रूप में बतलाई और उन्हें सादर नमस्कार किया।

#### श्रीभगवानुवाच

नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष  
आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ।  
तथापि मन्वन्तरमेतदत्र  
दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; न—नहीं; एकान्तिनः—अनन्य भक्ति के अतिरिक्त और किसी इच्छा से विहीन; मे—  
मुझसे; मयि—मुझमें; जातु—किसी समय; इह—इस संसार में; आशिषः—वरदान; आशासते—आन्तरिक इच्छा; अमुत्र—  
अगले जीवन में; च—तथा; ये—जो भक्त; भवत्-विधाः—आपकी तरह; तथापि—फिर भी; मन्वन्तरम्—एक मनु की आयु  
तक; एतत्—यह; अत्र—इस संसार में; दैत्य-ईश्वराणाम्—भौतिकतावादी मनुष्यों के ऐश्वर्यों का; अनुभुङ्क्ष्व—भोग कर सकते  
हो; भोगान्—सभी भौतिक ऐश्वर्यों को।

भगवान् ने कहा : हे प्रिय प्रह्लाद, तुम जैसा भक्त न तो इस जीवन में, न ही अगले जीवन में किसी प्रकार के भौतिक ऐश्वर्य की कामना करता है। तो भी मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम इस मन्वन्तर तक असुरों के राजा के रूप में इस भौतिक जगत में उनके ऐश्वर्य का भोग करो।

**तात्पर्य :** प्रत्येक मनु की आयु एकहत्तर युग चक्र की अनधि के तुल्य परिगणित की जाती है, जिसमें प्रत्येक युग ४३००००० वर्ष के समान होता है। यद्यपि नास्तिक लोग भौतिक ऐश्वर्य का भोग करना चाहते हैं और बड़े जोर-शोर से बड़े-बड़े आवास, सड़कें, शहर तथा कारखाने बनवाने का प्रयास करते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश, वे अस्सी, नब्बे वर्ष या बहुत हुआ तो एक सौ वर्षों से अधिक जीवित नहीं रह सकते। यद्यपि भौतिकतावादी व्यक्ति व्यामोह का साम्राज्य बनाने में इतना श्रम करता है लेकिन वह कुछ वर्षों से अधिक तक उसका भोग नहीं कर पाता। फिर भी चूँकि प्रह्लाद महाराज भक्त थे, अतएव भगवान् ने उन्हें भौतिकतावादियों के राजा के रूप में ऐश्वर्य-भोग करने की अनुमति प्रदान कर दी। प्रह्लाद महाराज ने हिरण्यकशिपु के परिवार में जन्म लिया था, जो सर्वोच्च भौतिकतावादी था और चूँकि प्रह्लाद अपने पिता के प्रामाणिक उत्तराधिकारी थे, अतएव भगवान् ने उन्हें अपने पिता द्वारा बनाये गये साम्राज्य पर इतने वर्षों तक भोग करने की अनुमति प्रदान की जिसकी गणना किसी भी भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए कर पाना असम्भव है। भक्त को भौतिक ऐश्वर्य की कामना नहीं करनी होती, किन्तु यदि वह शुद्ध भक्त होता है, तो बिना किसी प्रयास के उसे भौतिक सुख-भोग करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। अतएव हर एक को सलाह दी जाती है कि वह सभी परिस्थितियों में भक्ति करे। यदि कोई भौतिक ऐश्वर्य चाहता है, तो वह शुद्ध भक्त भी बन सकता है और इस तरह उसकी इच्छापूर्ति हो जाएगी। *श्रीमद्भागवत* (२.३.१०) में कहा गया है—

*अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।*

*तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥*

“चाहे कोई कुछ चाहे या नहीं अथवा वह भगवान् में तदाकार होना चाहे, तभी तो वह तभी बुद्धिमान है। यदि वह भगवान् की दिव्य सेवा द्वारा उनकी पूजा करता है।”

कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्व-

मावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ।

सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं

यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ १२ ॥

**शब्दार्थ**

कथाः—सन्देश या उपदेश; मदीयाः—मेरे द्वारा प्रदत्त; जुषमाणः—सदैव सुनकर या विचार करके; प्रियाः—अत्यन्त प्रिय; त्वम्—तुम; आवेश्य—पूर्णतया लीन होकर; माम्—मुझको; आत्मनि—अपने हृदय में; सन्तम्—विद्यमान रहकर; एकम्—एक

(वही परमात्मा); सर्वेषु—समस्त; भूतेषु—जीवों में; अधियज्ञम्—समस्त कर्मकाण्डों के भोक्ता; ईशम्—परमेश्वर को; यजस्व—पूजो; योगेन—भक्ति योग द्वारा; च—भी; कर्म—सकाम कर्म; हिन्वन्—त्यागकर।

भले ही तुम इस भौतिक जगत में ही क्यों न रहो, लेकिन तुम्हें निरन्तर मेरे उपदेशों तथा वचनों को सुनना चाहिए और मेरे ही विचार में लीन रहना चाहिए, क्योंकि मैं हर एक के हृदय में परमात्मा रूप में निवास करता हूँ। अतएव तुम सकाम कर्मों का परित्याग करके मेरी पूजा करो।

तात्पर्य : जब भक्त भौतिक दृष्टि से अत्यधिक ऐश्वर्यावान् बन जाता है, तो उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह अपने सकाम कर्मों का फल भोग रहा है। इस जगत में भक्त अपने सारे ऐश्वर्यों को भगवान् की सेवा में लगाता है, क्योंकि वह यह योजना बनाता रहता है कि अपने ऐश्वर्य से भगवान् की किस तरह सेवा करे जैसाकि भगवान् स्वयं सलाह दे रहे हैं। उसके पास जो भी भौतिक सम्पत्ति होती है उसे वह भगवान् के यश को तथा उनकी सेवा के प्रसार में लगाता है। भक्त कभी भी ऐसे कर्म के फल को भोगने के लिए कोई भी सकाम कर्म या कर्मकाण्ड नहीं करता। प्रत्युत वह यह जानता है कि ऐसा कर्मकाण्ड अल्पज्ञ के लिए होता है। नरोत्तमदास ठाकुर ने अपनी कृति प्रेम-भक्तिचन्द्रिका में कहा है—कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड—कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड दोनों ही विष के पात्रों के तुल्य हैं। जो इन दोनों की ओर आकृष्ट होता है, वह अपने मनुष्य जीवन को नष्ट कर देता है। अतएव भक्त कभी भी कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड में रुचि नहीं रखता। वह तो भगवान् की अनुकूल सेवा में (आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्) अथवा भक्ति सम्बन्धी आध्यात्मिक कार्यों के अनुशीलन में रुचि रखता है।

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं

कलेवरं कालजवेन हित्वा ।

कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां

विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

भोगेन—भौतिक सुख की अनुभूतियों से; पुण्यम्—पुण्य कर्म या उनके काम; कुशलेन—पवित्रतापूर्वक कर्म करके (समस्त पवित्र कर्मों में भक्ति सर्वश्रेष्ठ है); पापम्—अपवित्र कार्यों के सभी प्रकार के फल; कलेवरम्—शरीर; काल-जवेन—शक्तिशाली काल द्वारा; हित्वा—त्याग कर; कीर्तिम्—कीर्ति, ख्याति; विशुद्धाम्—दिव्य या पूर्णतया शुद्ध; सुर-लोक-गीताम्—स्वर्ग में भी प्रशंसित; विताय—सारे ब्रह्माण्ड में विस्तार करके; माम्—मुझ तक; एष्यसि—वापस आओगे; मुक्त-बन्धः—बन्धन से मुक्त होकर।

हे प्रह्लाद, इस भौतिक जगत में रहते हुए तुम सुख का अनुभव करके अपने पुण्यकर्म से सारे फलों को समाप्त कर सकोगे और पुण्यकर्म करके पापकर्मों को विनष्ट कर दोगे। शक्तिशाली काल के कारण तुम अपना शरीर-त्याग करोगे, किन्तु तुम्हारे कार्यों की ख्याति का गुणगान स्वर्गलोक तक में होगा। तुम बन्धनों से मुक्त होकर भगवद्धाम को लौट सकोगे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं— एवं प्रह्लादस्यांशेन साधनसिद्धत्वं नित्यसिद्धत्वं च नारदादिवज्ज्ञेयम्। भक्तों की दो श्रेणियाँ होती हैं— साधनसिद्ध तथा नित्यसिद्ध। प्रह्लाद महाराज मिश्रित सिद्ध हैं—अर्थात् वे अंशतः भक्ति के कारण और अंशतः शाश्वत् सिद्धि के कारण सिद्ध हैं। इनकी तुलना नारद जैसे भक्तों से की जाती है। भूतकाल में नारद मुनि पहले एक दासी पुत्र थे, किन्तु अगले जन्म में भक्ति करने के कारण उन्होंने साधनसिद्धि प्राप्त की। इतने पर भी वे नित्यसिद्ध थे, क्योंकि वे भगवान् को नहीं भुलाते।

कुशलेन शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य को भौतिक जगत में अत्यन्त कौशल से रहना चाहिए। यह जगत द्वैत जगत कहलाता है, क्योंकि इसमें कभी पुण्य करना होता है, तो कभी पाप। यद्यपि कोई पाप नहीं करना चाहता, किन्तु यह संसार ऐसा बना है कि इसमें सदैव संकट बना रहता है ( पदं पदं यद् विपदाम् )। इस तरह भक्ति करते हुए भी भक्त के अनेक शत्रु बन जाते हैं। प्रह्लाद महाराज को स्वयं इसका अनुभव हुआ, क्योंकि उनका पिता तक उनका शत्रु बन गया। भक्तों को चाहिए कि अत्यन्त कौशल के साथ वे सदैव भगवान् का चिन्तन करें जिससे दुख उनका स्पर्श भी न कर पाए। यह पाप-पुण्य की कुशल व्यवस्था है। प्रह्लाद महाराज जैसा प्रतिष्ठित भक्त जीवन्मुक्त होता है—अर्थात् इसी जीवन में भौतिक शरीर से मुक्त रहता है।

य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ।

त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—यह कार्य; कीर्तयेत्—कीर्तन करता है; मह्यम्—मुझको; त्वया—तुम्हारे द्वारा; गीतम्—प्रार्थना की गई; इदम्—यह; नरः—मनुष्य; त्वाम्—तुमको; च—भी; माम् च—मुझको भी; स्मरन्—स्मरण करते हुए; काले—कालान्तर में; कर्म-बन्धात्—कर्म के बन्धन से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

जो व्यक्ति तुम्हारे तथा मेरे कार्यों का सदैव स्मरण करता है और तुम्हारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं का कीर्तन करता है, वह कालान्तर में भौतिक कर्म-फलों से मुक्त हो जाता है।

**तात्पर्य :** यहाँ पर कहा गया है कि जो कोई प्रह्लाद महाराज के कार्य-कलापों का और उनसे सम्बन्धित नृसिंहदेव के कार्यकलापों का कीर्तन तथा श्रवण करता है यह धीरे-धीरे समस्त कर्मबन्धन से छूट जाता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (२.१५, २.५६) में कहा गया—

*यं हि न व्यथयन्ति एते पुरुषं पुरुषर्षभ ।*

*समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥*

“हे पुरुषश्रेष्ठ (अर्जुन)! जो व्यक्ति सुख तथा दुख से विचलित नहीं होता और दोनों में स्थिर बना रहता है, वह निश्चय ही मुक्ति का पात्र है।”

*दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।*

*वीतरागभयक्रोधः स्थितधीरमुनिरुच्यते ॥*

“जो तीन तापों के होते हुए भी विचलित नहीं होता, जो सुख से फूल नहीं उठता और जो आसक्ति, भय तथा क्रोध से मुक्त होता है, वह स्थिर चित्त वाला साधु (मुनि) कहलाता है।” भक्त को विषम परिस्थिति में न तो दुखी होना चाहिए, न भौतिक ऐश्वर्य में अत्यधिक प्रसन्न होना चाहिए। भौतिक जीवन की कुशल व्यवस्था यही है। चूँकि भक्त जानता है कि किस तरह कौशलपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिए इसलिए वह *जीवन्मुक्त* कहलाता है। *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में रूप गोस्वामी बताते हैं—

*ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा ।*

*निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥*

“जो व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्णचेतना में रहकर कर्म करता है (कृष्ण की सेवा करता है) वह इस भौतिक जगत में ही रहते हुए मुक्त पुरुष है, भले ही वह तथाकथित अनेक भौतिक कर्मों में क्यों न लगा रहे।” जीवन की किसी भी परिस्थिति में भक्ति में निरन्तर लगे रहने के कारण भक्त समस्त भवबन्धन से मुक्त होता है—

*भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्रपाकानपि सम्भवात् ।*

“कोई भले ही मांसभक्षी परिवार में क्यों न उत्पन्न हो, किन्तु भक्ति में रत होने पर वह शुद्ध हो जाता है।” (*भागवत* ११.१४.२१) श्रील जीव गोस्वामी इस श्लोक को अपने समर्थन में उद्धृत करते



हैं कि जो कोई प्रह्लाद महाराज के शुद्ध जीवन तथा कार्य-कलापों का कीर्तन करता है, वह भौतिक कार्यकलापों से मुक्त हो जाता है।

श्रीप्रह्लाद उवाच

वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ।

यदनिन्दतिपिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥ १५ ॥

विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ।

भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १६ ॥

तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्तादुस्तरादघात् ।

पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रह्लादः उवाच— प्रह्लाद महाराज ने कहा; वरम्—आशीर्वाद; वरये—माँगता हूँ; एतत्—यह; ते—आपसे; वरद-ईशात्—जो ब्रह्मा तथा शिव देवताओं को भी वर प्रदान करते हैं ऐसे ईश्वर से; महा-ईश्वर—हे परमेश्वर; यत्—उस; अनिन्दत्—निन्दा की; पिता—पिता ने; मे—मेरे; त्वाम्—आपकी; अविद्वां—ज्ञान-विहीन; तेजः—बल; ऐश्वरम्—श्रेष्ठता; विद्ध—दूषित होकर; अमर्ष—क्रोध में; आशयः—हृदय के भीतर; साक्षात्—प्रत्यक्ष; सर्व-लोक-गुरुम्—समस्त जीवों के परम गुरु को; प्रभुम्—परम स्वामी को; भ्रातृ-हा—उसके भाई की हत्या करने वाला; इति—इस प्रकार; मृषा-दृष्टिः—मिथ्या बोध के कारण ईर्ष्यालु; त्वत्-भक्ते—आपके भक्त; मयि—मुझमें; च—तथा; अघ-वान्—घोर पाप करने वाला; तस्मात्—उससे; पिता—पिता; मे—मेरा; पूयेत—शुद्ध हो जावे; दुरन्तात्—महान्; दुस्तरात्—दुस्तर; अघात्—समस्त पापकर्मों से; पूतः—पवित्र हुआ ( यद्यपि वह था ); ते—तुम्हारी; अपाङ्ग—चितवन से; संदृष्टः—देखा जाकर; तदा—उस समय; कृपण-वत्सल—हे भौतिकतावादी पर दयालु।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे परमेश्वर, चूँकि आप पतितात्माओं पर इतने दयालु हैं अतएव मैं आपसे एक ही वर माँगता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपने मेरे पिता की मृत्यु के समय अपनी कृपादृष्टि डालकर उन्हें पवित्र बना दिया था, किन्तु वे आपकी शक्ति तथा श्रेष्ठता से अनजान होने के कारण आप पर मिथ्या ही यह सोचकर क्रुद्ध थे कि आप उनके भाई को मारने वाले हैं। इस तरह उन्होंने समस्त जीवों के गुरु आपकी प्रत्यक्ष निन्दा की थी और आपको भक्त अर्थात् मेरे ऊपर जघन्य पातक किये थे। मेरी इच्छा है कि उन्हें इन पापों के लिए क्षमा कर दिया जाये।

तात्पर्य : यद्यपि हिरण्यकशिपु भगवान् की गोद के सम्पर्क में आते ही तथा भगवान् द्वारा दृष्टिपात किये जाने पर ही शुद्ध हो चुका था, किन्तु तो भी प्रह्लाद महाराज भगवान् के अपने मुख से सुनना चाहते थे कि उनकी अहैतुकी कृपा से उनका पिता शुद्ध हो गया। उन्होंने यह स्तुति अपने पिता के लिए की। वैष्णव पुत्र होने के नाते, अपने पिता द्वारा इतना कष्ट पहुँचाये जाने पर भी वे अपने पिता के वात्सल्य को भुला नहीं पाये थे।

श्रीभगवानुवाच

त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।

यत्साधोऽस्य कुले जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्रिः-सप्तभिः—सात गुणित तीन अर्थात् इक्कीस; पिता—पिता; पूतः—पवित्र; पितृभिः—तुम्हारे पुरखों सहित; सह—सभी एकसाथ; ते—तुम्हारा; अनघ—हे निष्पाप व्यक्ति ( प्रह्लाद महाराज ); यत्—चूँकि; साधो—हे परम साधु पुरुष; अस्य—इस व्यक्ति के; कुले—वंश में; जातः—जन्म लिया; भवान्—तुमने; वै—निस्सन्देह; कुल-पावनः—पूरे वंश को पवित्र करनेवाले।

भगवान् ने कहा : हे परम पवित्र, साधु पुरुष, तुम्हारे पिता तुम्हारे परिवार के इक्कीस पुरखों सहित पवित्र कर दिये गये हैं। चूँकि तुम इस परिवार में उत्पन्न हुए थे, अतएव सारा कुल पवित्र हो गया।

तात्पर्य : त्रिः सप्तभिः का अर्थ है सात गुणित तीन। कोई भी मनुष्य अपने परिवार की विगत चार-पाँच पीढ़ियों अपने परदादा या उनके पिता तक के ही नाम गिन सकता है, किन्तु चूँकी भगवान् इक्कीस पुरखों का उल्लेख करते हैं, अतएव यह सूचित होता है कि कोई वरदान अन्य परिवारों तक भी प्रसार करता है। जिस परिवार में कोई इस समय जन्म लिए रहता है उसके अतिरिक्त वह अन्य परिवारों में भी जन्मा रहता है। इस प्रकार जब कोई वैष्णव किसी एक परिवार में जन्म लेता है, तो वह भगवत् कृपा से न केवल अपने उस परिवार को पवित्र बनाता है, अपितु उन परिवारों को भी पवित्र बनाता है जिनमें वह पहले जन्म लिए रहता है।

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।

साधवः समुदाचारास्ते पूयन्तेऽपि कीकटाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यत्र यत्र—जहाँ-जहाँ; च—भी; मत्-भक्ताः—मेरे भक्त; प्रशान्ताः—अत्यन्त शान्त; सम-दर्शिनः—सबों को समभाव से देखने वाले; साधवः—समस्त सद्गुणों से युक्त; समुदाचाराः—समान रूप से उदार; ते—वे सभी; पूयन्ते—पवित्र हो जाते हैं; अपि—भी; कीकटाः—पतित देश या उसके वासी।

जहाँ कहीं भी सदाचारी तथा सद्गुणसम्पन्न, शान्त एवं समदर्शी भक्त होते हैं वह देश तथा परिवार भले ही गर्हित क्यों न हो, पवित्र हो जाते हैं।

तात्पर्य : जहाँ भी प्रतिष्ठित भक्त ठहरते हैं, न केवल वे तथा उनके कुल अपितु समूचा देश पवित्र हो जाता है।

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन ।  
उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भाविगितस्पृहाः ॥ २० ॥

**शब्दार्थ**

सर्व-आत्मना—सभी प्रकार से, यहाँ तक कि क्रोध तथा ईर्ष्या से युक्त; न—कभी नहीं; हिंसन्ति—ईर्ष्या करते हैं; भूत-ग्रामेषु—समस्त योनियों में; किञ्चन—इनमें से किसी के प्रति; उच्च-अवचेषु—ऊँच-नीच जीवों में; दैत्य-इन्द्र—हे दैत्यों के राजा, प्रह्लाद; मत्-भाव—मेरी भक्ति के कारण; विगत—त्याग हुआ; स्पृहाः—क्रोध तथा लालच के सभी गुण ।

हे दैत्यराज प्रह्लाद, मेरी भक्ति में अनुरक्त रहने के कारण मेरा भक्त उच्च तथा निम्न जीवों में भेद-भाव नहीं बरतता । सभी तरह से वह किसी से ईर्ष्या नहीं करता ।

भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ।  
भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१ ॥

**शब्दार्थ**

भवन्ति—हो जाते हैं; पुरुषाः—मनुष्य; लोके—इस संसार में; मत्-भक्ताः—मेरे शुद्ध भक्त; त्वाम्—तुमको; अनुव्रताः—अनुसरण करते हुए; भवान्—तुम; मे—मेरा; खलु—निस्सन्देह; भक्तानाम्—समस्त भक्तों का; सर्वेषाम्—विभिन्न रसों में; प्रतिरूप-धृक्—यथार्थ आदर्श ।

जो तुम्हारे आदर्श का अनुसरण करेंगे वे स्वभावतः मेरे शुद्ध भक्त हो जाएँगे । तुम मेरे भक्त का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हो और अन्य लोग तुम्हारे पदचिन्हों का अनुसरण करेंगे ।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील मध्वाचार्य स्कन्द पुराण से एक उदाहरण देते हैं—

ऋते तु तात्त्विकान् देवान् नारदादींस्तथैव च ।

प्रह्लादादुत्तमः को नु विष्णुभक्तौ जगत्त्रये ॥

भगवान् के अनेकानेक भक्त हैं जिनकी गणना श्रीमद्भागवत (६.३.२०) में इस प्रकार कराई गई है—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिवैयासकिर्वयम् ॥

बारह अधिकारी भक्तों में, जिनमें ब्रह्मा, नारद, शिव, कपिल, मनु इत्यादि सम्मिलित हैं, प्रह्लाद महाराज सर्वोत्तम उदाहरण हैं ।

कुरु त्वं प्रेतकृत्यानि पितुः पूतस्य सर्वशः ।  
मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥

## शब्दार्थ

कुरु—सम्पन्न करो; त्वम्—तुम; प्रेत-कृत्यानि—मृत्यु के बाद के क्रिया-कर्म; पितुः—अपने पिता के; पूतस्य—पहले ही शुद्ध हुए; सर्वशः—सभी प्रकार से; मत्-अङ्ग—मेरा शरीर; स्पर्शनेन—स्पर्श करने से; अङ्ग—हे बालक; लोकान्—लोकों को; यास्यति—जाएगा; सु-प्रजाः—भक्त-नागरिक बनने के लिए।

मेरे बालक, तुम्हारा पिता अपनी मृत्यु के समय मेरे शरीर के स्पर्श मात्र से पहले ही पवित्र हो चुका है। तो भी पुत्र का कर्तव्य है कि वह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न करे जिससे उसका पिता ऐसे लोक को जा सके जहाँ वह अच्छा नागरिक तथा भक्त बन सके।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि यद्यपि हिरण्यकशिपु पहले ही पवित्र हो चुका था, किन्तु पुनः भक्त बनने के लिए उसे उच्चलोक में जन्म लेना पड़ा था। प्रह्लाद महाराज को शिष्टाचार के रूप में अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिए कहा गया, क्योंकि भगवान् किसी भी हालत में विधि-विधानों को रोकना नहीं चाहते। मध्व मुनि का भी आदेश है—

मधुकैटभौ भक्त्यभावा दूरौ भगवतो मृतौ ।

तम एव क्रमादाप्तौ भक्त्या चेद्यो हरिं ययौ ॥

जब भगवान् ने मधु-कैटभ असुरों को मार डाला तो उनके सम्बन्धियों ने भी अन्त्येष्टि क्रिया की जिससे वे दोनों भगवद्धाम वापस जा सकें।

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।

मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३ ॥

## शब्दार्थ

पित्र्यम्—पैतृक; च—भी; स्थानम्—स्थान पर, सिंहासन पर; आतिष्ठ—बैठो; यथा-उक्तम्—जैसा कहा गया है; ब्रह्मवादिभिः—वैदिक सभ्यता के पालनकर्ताओं द्वारा; मयि—मुझमें; आवेश्य—पूर्णतया लीन करके; मनः—मन को; तात—हे मेरे बालक; कुरु—सम्पन्न करो; कर्माणि—वैधानिक कार्य; मत्-परः—मेरे कार्य के लिए।

अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करने के बाद तुम अपने पिता के साम्राज्य का भार सँभालो। तुम सिंहासन पर बैठो और भौतिक कार्यकलापों से तनिक भी विचलित मत होओ। तुम अपना मन मुझ पर स्थिर रखो। तुम शिष्टाचार के रूप में वेदों के आदेशों का उल्लंघन किये बिना अपना विहित कार्य कर सकते हो।

**तात्पर्य :** जब कोई भक्त बन जाता है, तो वैदिक विधि-विधानों के प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं रह जाता। मनुष्य को अनेक कार्य करने होते हैं, किन्तु यदि कोई भगवद्भक्त बन जाता है, तो वह उनके लिए बाध्य नहीं होता। जैसाकि श्रीमद्भागवत (११.५.४१) में कहा गया है—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां  
न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।  
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं  
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

जिसने भगवान् के चरणकमलों में शरण ले ली है, वह अपने पूर्वजों, ऋषियों, मानव समाज, सामान्य व्यक्ति या किसी जीव का ऋणी नहीं रह जाता।

तो भी भगवान् ने प्रह्लाद महाराज को विधि-विधान पालन करने की सलाह दी, क्योंकि वे राजा बनने जा रहे थे और अन्य लोगों को उनका अनुसरण करना था। इस तरह नृसिंहदेव ने प्रह्लाद महाराज को अपने राजनीतिक कार्यों में व्यस्त होने की सलाह दी जिससे लोग भगवद्भक्त बन सकें—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।  
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

“महापुरुष जो भी कर्म करता है, सामान्य जन उसी का अनुसरण करते हैं और वह अपने आदर्श कार्यों से जो प्रमाण प्रस्तुत करता है सारा संसार उसी का अनुगमन करता है।” ( भगवद्गीता ३.२१)। मनुष्य को किसी सांसारिक कार्य में आसक्त नहीं होना चाहिए, किन्तु भक्त सामान्य जन को दिखाने के लिए आदर्श रूप में ऐसा कार्य कर सकता है, जिससे वह वैदिक आदेशों से विपथ न हो।

श्रीनारद उवाच

प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ।  
यथाह भगवान् राजन् भगवान् राजन्—हे राजा युधिष्ठिर; अभिषिक्तः—सिंहासन पर बैठाया गया; द्वि-जातिभिः—  
उपस्थित ब्राह्मणों द्वारा ।

**शब्दार्थ**

श्री-नारदः उवाच—नारद मुनि ने कहा; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; अपि—भी; तथा—उस तरह से; चक्रे—सम्पन्न किया; पितुः—अपने पिता का; यत्—जो कुछ; साम्परायिकम्—मृत्यु के पश्चात् किये जाने वाले कर्मकाण्ड; यथा—जिस तरह; आह—आज्ञा दी; भगवान्—भगवान्; राजन्—हे राजा युधिष्ठिर; अभिषिक्तः—सिंहासन पर बैठाया गया; द्वि-जातिभिः—उपस्थित ब्राह्मणों द्वारा ।

श्री नारद मुनि ने आगे कहा : भगवान् की आज्ञानुसार प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। हे राजा युधिष्ठिर, तब उसे हिरण्यकशिपु के राजसिंहासन पर ब्राह्मणों के निर्देशानुसार बैठाया गया।

तात्पर्य : यह आवश्यक है कि समाज चार प्रकार के जन समूहों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—में विभाजित हो। यहाँ हम यह देखते हैं कि यद्यपि प्रह्लाद महाराज सभी प्रकार से पूर्ण थे, किन्तु उन्होंने ब्राह्मणों के आदेशों का पालन किया जिन्होंने वैदिक अनुष्ठान सम्पन्न कराये। अतएव समाज में अत्यन्त बुद्धिमान वर्ग के नेता होने चाहिए जो वैदिक ज्ञान में पटु हों जिससे वे समग्र जनता को वैदिक नियमों का पालन करने के लिए मार्गदर्शन दे सकें और जनता क्रमशः पूर्ण बनकर भगवद्धाम जाने के योग्य बन सके।

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ।

स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

प्रसाद-सुमुखम्—भगवान् के प्रसन्न होने से जिसका मुख तेजोमय था; दृष्ट्वा—यह दशा देखकर; ब्रह्मा—ब्रह्माजी; नर-हरिम्—नृसिंहदेव को; हरिम्—भगवान्; स्तुत्वा—प्रार्थना करके; वाग्भिः—दिव्य शब्दों से; पवित्राभिः—पवित्र; प्राह—बोले; देव-आदिभिः—अन्य देवताओं से; वृतः—घिरे हुए।

अन्य देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी का मुखमण्डल चमक रहा था क्योंकि भगवान् प्रसन्न थे। अतएव उन्होंने दिव्य शब्दों से भगवान् की प्रार्थना की।

श्रीब्रह्मोवाच

देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ।

दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; देव-देव—हे समस्त देवताओं के स्वामी; अखिल-अध्यक्ष—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी; भूत-भावन—हे समस्त जीवों के कारण; पूर्व-ज—हे आदि पुरुष; दिष्ट्या—अपने उदाहरण से या हमारे सौभाग्य से; ते—तुम्हारे द्वारा; निहतः—मारा गया; पापः—अत्यन्त पापी; लोक-सन्तापनः—समग्र ब्रह्माण्ड को दुख देने वाला; असुरः—हिरण्यकशिपु नामक असुर।

ब्रह्माजी ने कहा : हे देवताओं के परम स्वामी, हे समग्र ब्रह्माण्ड के अध्यक्ष, हे समस्त जीवों के वरदाता, हे आदि पुरुष, यह हमारा सौभाग्य है कि आपने इस पापी असुर को मार डाला जो समग्र ब्रह्माण्ड को दुख देने वाला था।

तात्पर्य : भगवद्गीता (१०.८) में पूर्वज शब्द की व्याख्या दी गई है—अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। ब्रह्मा समेत सारे देवता भगवान् से प्रकट होते हैं। अतएव समस्त कारणों के कारण आदि पुरुष गोविन्द हैं।

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ।  
तपोयोगबलोल्लङ्घः समस्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो व्यक्ति; असौ—वह ( हिरण्यकशिपु ); लब्ध-वरः—असामान्य वर प्रदान किये जाने पर; मत्तः—मुझसे; न वध्यः—न मारा जा सकने वाला; मम सृष्टिभिः—मेरे द्वारा उत्पन्न किसी भी जीव द्वारा; तपः-योग-बल—तपस्या, योग तथा बलद्वारा; उल्लङ्घः—इस प्रकार से अत्यन्त गर्वित; समस्त—सारे; निगमान्—वैदिक आदेशों को; अहन्—न मानते हुए, उल्लंघन करके।

इस असुर हिरण्यकशिपु ने मुझसे यह वरदान प्राप्त किया था कि वह मेरी सृष्टि में किसी भी जीव के द्वारा मारा नहीं जाएगा। इस आश्वासन के कारण तथा तपस्या और योग से प्राप्त बल द्वारा वह अत्यन्त गर्वित हो उठा और समस्त वैदिक आदेशों का उल्लंघन करने लगा।

दिष्ट्या तत्तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ।  
त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; तत्-तनयः—उसका पुत्र; साधुः—साधु पुरुष; महा-भागवतः—महान् भक्त; अर्भकः—बालक होते हुए; त्वया—आपके द्वारा; विमोचितः—मुक्त किया हुआ; मृत्योः—मृत्यु के बन्धन से; दिष्ट्या—भाग्य से; त्वाम् समितः—पूर्णतः आपकी शरण में; अधुना—इस समय।

सौभाग्य से हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद अब मृत्यु से बचा लिया गया है और यद्यपि वह अभी बालक है, किन्तु है महाभागवत, अब वह पूर्णतया आपके चरणकमलों की शरण में है।

एतद्वपुस्ते भगवन्ध्यायतः परमात्मनः ।  
सर्वतो गोप्तृ सन्नासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—यह; वपुः—शरीर; ते—तुम्हारा; भगवन्—हे भगवान्; ध्यायतः—जो ध्यान करते हैं; परम-आत्मनः—परम पुरुष का; सर्वतः—सभी जगह से; गोप्तृ—रक्षक; सन्नासात्—सभी प्रकार के भय से; मृत्योः अपि—यहाँ तक कि मृत्यु भय से भी; जिघांसतः—यदि शत्रु भी ईर्ष्या करे।

हे भगवान्, हे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर! आप परमात्मा हैं। यदि कोई आपके दिव्य शरीर का ध्यान करता है, आप सभी प्रकार के भय से, यहाँ तक कि आसन्न मृत्यु-भय से भी, उसकी रक्षा करते हैं।

तात्पर्य : हर एक की मृत्यु निश्चित है, क्योंकि कोई भी मृत्यु के हाथों से बच नहीं सकता। यह मृत्यु भगवान् का ही रूप है ( मृत्युः सर्वहरश्चाहम् )। किन्तु भक्त हो जाने पर उसे सीमित आयु के अनुसार मरना नहीं होता। हर एक की आयु सीमित है, किन्तु भगवान् की कृपा होने से भक्त की आयु बढ़ सकती है, क्योंकि भगवान् किसी के भी कर्मफल को निरस्त कर सकते हैं। कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां। यह ब्रह्म-संहिता (५.५४) का कथन है। भक्त कर्म-नियमों के अधीन नहीं होता। अतएव भगवान् की अहैतुकी कृपा से भक्त अपनी निर्धारित मृत्यु से भी बच सकता है। ईश्वर मृत्यु-भय से भी अपने भक्त की रक्षा करता है।

श्रीभगवानुवाच

मैवं विभोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भव ।

वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने ( ब्रह्मा को ) उत्तर दिया; मा—मत; एवम्—इस प्रकार; विभो—हे महापुरुष; असुराणाम्—असुरों के; ते—तुम्हारे द्वारा; प्रदेयः—दिया हुआ वर; पद्म-सम्भव—हे कमल पुष्प से उत्पन्न ब्रह्माजी; वरः—वरदान; क्रूर-निसर्गाणाम्—जो व्यक्ति प्रकृति से अत्यन्त क्रूर तथा ईर्ष्यालु होते हैं; अहीनाम्—साँपों को; अमृतम्—अमृत या दूध; यथा—जिस प्रकार।

भगवान् ने उत्तर दिया: हे ब्रह्मा, हे कमल पुष्प से उत्पन्न महान्प्रभु, जिस प्रकार साँप को दूध पिलाना घातक होता है उसी तरह असुरों को वर प्रदान करना घातक होता है, क्योंकि वे प्रकृति से क्रूर तथा ईर्ष्यालु होते हैं। मैं तुम्हें सचेत करता हूँ कि तुम फिर से किभी किसी असुर को ऐसा वर मत प्रदान करना।

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्ततश्चान्तर्दधे हरिः ।

अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारद मुनि ने कहा; इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; भगवान्—भगवान्; राजन्—हे राजा युधिष्ठिर; ततः—उस स्थान से; च—भी; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गये; हरिः—भगवान् हरि; अदृश्यः—अदृश्य; सर्व-भूतानाम्—समस्त जीवों के द्वारा; पूजितः—पूजे जाकर; परमेष्ठिना—ब्रह्मा द्वारा।

नारद मुनि ने आगे कहा : हे राजा युधिष्ठिर, ब्रह्मा को उपदेश देते हुए सामान्य व्यक्ति को न दिखने वाले भगवान् इस तरह बोले। तब ब्रह्मा द्वारा पूजित होकर भगवान् उस स्थान से अदृश्य हो गये।



ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ।  
भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥

**शब्दार्थ**

ततः—तत्पश्चात्; सम्पूज्य—पूजा करके; शिरसा—सिर झुका करके; ववन्दे—प्रार्थना की; परमेष्ठिनम्—ब्रह्मा को; भवम्—शिव को; प्रजापतीन्—प्रजापतियों को; देवान्—सारे बड़े-बड़े देवताओं को; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज ने; भगवत्-कलाः—भगवान् के अंश ।

तब प्रह्लाद महाराज ने भगवान् के अंश रूप समस्त देवताओं की यथा ब्रह्मा, शिव तथा प्रजापतियों की पूजा और स्तुति की ।

ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ।  
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिम् ॥ ३३ ॥

**शब्दार्थ**

ततः—तत्पश्चात्; काव्य-आदिभिः—शुक्राचार्य तथा अन्यो के; सार्धम्—साथ; मुनिभिः—बड़े-बड़े सन्त पुरुषों के; कमल-आसनः—ब्रह्माजी; दैत्यानाम्—सारे असुरों का; दानवानाम्—सारे देवताओं का; च—तथा; प्रह्लादम्—प्रह्लाद महाराज को; अकरोत्—बना दिया; पतिम्—राजा या स्वामी ।

तत्पश्चात् शुक्राचार्य तथा अन्य बड़े-बड़े सन्त पुरुषों सहित कमलासीन ब्रह्माजी ने प्रह्लाद को ब्रह्माण्ड के सारे असुरों तथा दानवों का राजा बना दिया ।

तात्पर्य : नृसिंहदेव की कृपा से प्रह्लाद महाराज अपने पिता हिरण्यकशिपु से भी बड़े राजा बन गये । ब्रह्माजी ने अन्य ऋषियों तथा देवताओं की उपस्थिति में उनका राज्याभिषेक कर दिया ।

प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ।  
स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥

**शब्दार्थ**

प्रतिनन्द्य—बधाई देकर; ततः—तत्पश्चात्; देवाः—सारे देवता; प्रयुज्य—देकर; परम-आशिषः—शुभ आशीर्वाद; स्व-धामानि—अपने-अपने धामों को; ययुः—लौट गये; राजन्—हे राजा युधिष्ठिर; ब्रह्म-आद्याः—ब्रह्मा आदि सारे देवता; प्रतिपूजिताः—( प्रह्लाद महाराज द्वारा ) भली-भाँति पूजित होकर ।

हे राजा युधिष्ठिर, प्रह्लाद महाराज द्वारा भली-भाँति पूजित होकर ब्रह्मादि सारे देवताओं ने उन्हें अपने-अपने आशीर्वाद दिये और फिर अपने-अपने आवासों को वापस चले गये ।

एवं च पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ।  
हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥

**शब्दार्थ**

एवम्—इस तरह से; च—भी; पार्षदौ—दो निजी संगी; विष्णोः—विष्णु के; पुत्रत्वम्—पुत्र बनकर; प्रापितौ—प्राप्त करके; दितेः—दिति के; हृदि—हृदय में; स्थितेन—स्थित; हरिणा—परमेश्वर द्वारा; वैर-भावेन—शत्रु मानकर; तौ—दोनों; हतौ—मारे गये।

इस प्रकार भगवान् विष्णु के दोनों पार्षद, जो दिति के पुत्र हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु बने थे, मार डाले गये। भ्रमवश उन्होंने सोचा था कि हर एक के हृदय में निवास करने वाले परमेश्वर उनके शत्रु हैं।

तात्पर्य : नृसिंहदेव तथा प्रह्लाद महाराज सम्बन्धी वार्ता तब शुरू हुई जब महाराज युधिष्ठिर ने नारद से पूछा कि शिशुपाल किस तरह कृष्ण के शरीर में लीन हो गया। शिशुपाल तथा दन्तवक्र हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु ही थे। यहाँ पर नारद मुनि बता रहे हैं कि किस प्रकार विष्णु के दोनों पार्षद तीन विभिन्न जन्मों में उन्हीं के द्वारा मारे गये। सर्वप्रथम वे हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु असुर हुए थे।

पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ।  
कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३६ ॥

**शब्दार्थ**

पुनः—फिर; च—भी; विप्र-शापेन—ब्राह्मण द्वारा शापित होकर; राक्षसौ—दो राक्षस; तौ—वे दोनों; बभूवतुः—अवतरित हुए; कुम्भकर्ण-दश-ग्रीवौ—कुम्भकर्ण तथा दशशीश रावण के नाम से विख्यात; हतौ—वे भी मार डाले गये; तौ—दोनों; राम-विक्रमैः—भगवान् राम के अतुलित बल से।

ब्राह्मणों द्वारा शापित होने से इन दोनों पार्षदों ने कुम्भकर्ण तथा दशग्रीव रावण के रूप में फिर से जन्म लिया। ये दोनों राक्षस भगवान् रामचन्द्र के अतुलित पराक्रम द्वारा मारे गये।

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामशायकैः ।  
तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥

**शब्दार्थ**

शयानौ—लेटे हुए; युधि—युद्धस्थल में; निर्भिन्न—बींधे जाकर; हृदयौ—हृदय में; राम-शायकैः—रामचन्द्र के बाणों से; तत्-चित्तौ—भगवान् राम के विषय में सोचते हुए; जहतुः—त्याग दिया; देहम्—शरीर; यथा—जिस प्रकार; प्राक्तन-जन्मनि—पूर्वजन्मों में।

भगवान् रामचन्द्र के बाणों से बिंध कर कुम्भकर्ण तथा रावण दोनों ही युद्धभूमि में पड़े रहे और भगवान् के विचार में लीन होकर उसी तरह अपने अपने शरीर छोड़ दिये जिस तरह अपने पूर्व-जन्म में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के रूप में किया था।

ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरुषजौ ।  
हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

तौ—दोनों; इह—इस मानव समाज में; अथ—इस प्रकार; पुनः—फिर; जातौ—जन्म लिया; शिशुपाल—शिशुपाल; करुष-  
जौ—दन्तवक्र; हरौ—भगवान् में; वैर—अनुबन्धेन—भगवान् को शत्रु मानने के बन्धन द्वारा; पश्यतः—देखते हुए; ते—तुम्हारे;  
समीयतुः—भगवान् के चरणकमलों में लीन हो गये या चले गये।

उन्होंने फिर से मानव समाज में शिशुपाल तथा दन्तवक्र के रूप में जन्म लिया और भगवान् से वैसा ही वैर-भाव बनाये रखा। ये वही थे, जो ही तुम्हारे समक्ष भगवान् के शरीर में लीन हो गये।

तात्पर्य : वैरानुबन्धेन—भगवान् का शत्रु बनना भी जीव के लिए लाभप्रद होता है। कामाद्द्वेषाद् भयात् स्नेहाद्। जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने संस्तुति है मनुष्य को कामेच्छा, क्रोध, भय या भगवान् की ईर्ष्या या किसी अन्य प्रकार से ( तस्मात् केनाप्युपायेन ) भगवान् से आसक्त होना चाहिए और अन्ततः भगवद्धाम लौट जाना चाहिए। अतएव ऐसे व्यक्ति के विषय में क्या कहा जा सकता है, जो भगवान् से दास, सखा, पिता, माता, या प्रेमी के रूप में सम्बन्धित हो ?

एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ।  
जहुस्तेऽन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३९ ॥

#### शब्दार्थ

एनः—यह पापकर्म ( भगवान् की निन्दा का ); पूर्व-कृतम्—पूर्व जन्म में किया गया; यत्—जो; तत्—वह; राजानः—  
राजागण; कृष्ण-वैरिणः—सदैव कृष्ण के शत्रु बने रहने वाले; जहुः—त्याग दिया; ते—वे सभी; अन्ते—मृत्यु के समय; तत्-  
आत्मानः—वही आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त करके; कीटः—कीड़ा; पेशस्कृतः—काली भृङ्गी द्वारा ( पकड़ा गया ); यथा—जिस  
तरह।

न केवल शिशुपाल तथा दन्तवक्र अपितु अन्य अनेकानेक राजा जो कृष्ण के शत्रु बने हुए थे अपनी मृत्यु के समय मोक्ष को प्राप्त हुए। चूँकि वे भगवान् के विषय में सोचते थे, अतः उन्हें भगवान्-जैसा आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ जिस तरह भृङ्गी द्वारा पकड़ा गया कीड़ा भृङ्गी का शरीर प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य : यहाँ पर यौगिक ध्यान का रहस्य समझाया गया है। असली योगी अपने हृदयों में सदैव विष्णु के स्वरूप का ध्यान करते हैं। फलस्वरूप वे मृत्यु के समय विष्णु के स्वरूप का ध्यान धरते हुए अपना शरीर त्याग कर विष्णुलोक या वैकुण्ठलोक को प्राप्त करते हैं जहाँ उन्हें विष्णु जैसा ही स्वरूप प्राप्त होता है। हम छोटे स्कंध में देख चुके हैं कि जब अजामिल का उद्धार करने के लिए वैकुण्ठ से

विष्णुदूत आये तो वे विष्णु सरीखे ही लग रहे थे। उनके भी चार हाथ थे और उनका स्वरूप विष्णु जैसा था। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि कोई विष्णु का चिन्तन करने का अभ्यास करे और मृत्यु के समय उन्हीं के विचार में पूर्णतया लीन रहे तो वह भगवद्धाम वापस चला जाता है। यहाँ तक कि कृष्ण के शत्रु ने भी, यथा राजा कंस जो भयवश कृष्ण का चिन्तन करता था, भगवान् के ही समान आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त किया।

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाभिदा ।

नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

यथा यथा—जिस जिस तरह; भगवतः—भगवान् की; भक्त्या—भक्ति से; परमया—परम; अभिदा—ऐसे कार्यकलापों का सतत चिन्तन करते हुए; नृपाः—राजा; चैद्य-आदयः—शिशुपाल, दन्तवक्र आदि; सात्म्यम्—वही रूप; हरेः—भगवान् का; तत्-चिन्तया—निरन्तर उनका चिन्तन करने से; ययुः—भगवद्धाम वापस गये।

जो शुद्ध भक्त भक्ति के द्वारा भगवान् का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, वे उन्हीं जैसा शरीर प्राप्त करते हैं। यह सारूप्य मुक्ति कहलाती है। यद्यपि शिशुपाल, दन्तवक्र तथा अन्य राजा कृष्ण का अपने शत्रु के रूप में चिंतन करते थे, किन्तु उन्हें भी वैसा ही फल प्राप्त हुआ।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में चैतन्य-चरितामृत में सनातन गोस्वामी को उपदेश देते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने बताया कि भक्त को बाह्य रूप से नियमतः भक्ति के दैनन्दिन कार्य करने चाहिए, किन्तु अन्तः रूप से उसे उस विशेष भाव का चिन्तन करना चाहिए जिससे वह भगवान् की सेवा के प्रति आकृष्ट है। भगवान् का ऐसा निरन्तर ध्यान करते रहने से भक्त भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है। जैसाकि भगवद्गीता (४.९) में कहा गया है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—अपना शरीर त्यागने के बाद भक्त को पुनः भौतिक शरीर की प्राप्ति नहीं होती, अपितु वह भगवद्धाम को चला जाता है जहाँ उसे भगवान् के उन नित्य पार्षदों का सा आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है जिनके कार्यकलापों का वह अनुयायी बना रहता है। किन्तु यदि भक्त भगवान् की निरन्तर सेवा करना चाहता है, तो वह भगवान् के पार्षदों का यथा ग्वालियों, गोपियों, भगवान् के माता-पिता, उनके दासों तथा भगवान् के धाम के वृक्ष, भूमि, पशु, लता तथा जल इत्यादि का निरन्तर चिन्तन कर सकता है। इनके विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहने से मनुष्य को दिव्य पद की प्राप्ति होती है। शिशुपाल, दन्तवक्र, कंस, पौण्ड्रक, नरकासुर तथा शाल्व जैसे राजाओं का इसी तरह उद्धार हुआ। इसकी पुष्टि मध्वाचार्य ने की है—

पौण्ड्रके नरके चैव शाल्वे कंसे च रुक्मिणि ।

आविष्टास्तु हरेर्भक्तास्तद्भक्त्या हरिमापिरे ॥

यद्यपि पौण्ड्रक, नरकासुर, शाल्व तथा कंस—ये सभी भगवान् के शत्रु थे, किन्तु ये सारे राजा उनके विषय में निरन्तर सोचा करते थे, अतएव उन्हें वैसी ही मुक्ति—*सारूप्य मुक्ति*—प्राप्त हुई। ज्ञान-भक्त को भी वही गति मिलती है। यदि भगवान् के शत्रु तक उनका निरन्तर चिन्तन करके मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, तो उन शुद्ध भक्तों के विषय में क्या कहा जाये जो सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं और प्रत्येक कार्य में भगवान् के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सोचते ?

आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।

दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४१ ॥

**शब्दार्थ**

आख्यातम्—वर्णन किया गया; सर्वम्—सब कुछ; एतत्—यह; ते—तुमसे; यत्—जो भी; माम्—मुझसे; त्वम्—तुमने; परिपृष्टवान्—पूछा; दमघोष-सुत-आदीनाम्—दमघोष के पुत्र ( शिशुपाल ) तथा अन्यो का; हरेः—भगवान् का; सात्म्यम्—समान स्वरूप से; अपि—भी; द्विषाम्—यद्यपि वे शत्रु थे।

तुमने मुझसे पूछा था कि किस तरह शिशुपाल तथा अन्यो ने भगवान् का शत्रु होते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया सो वह सब कुछ मैंने तुम्हें बतला दिया है।

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ।

अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥

**शब्दार्थ**

एषा—यह सब; ब्रह्मण्य-देवस्य—भगवान् का, जो समस्त ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं; कृष्णस्य—आदि भगवान् कृष्ण का; च—भी; महा-आत्मनः—परमात्मा; अवतार-कथा—उनके अवतार की कथाएँ; पुण्या—पवित्र, शुद्ध करने वाली; वधः—मारा जाना, वध; यत्र—जिसमें; आदि—प्रारम्भिक कल्प में; दैत्ययोः—दोनों असुरों ( हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु ) का।

भगवान् कृष्ण सम्बन्धी इस कथा में भगवान् के विभिन्न अवतार वर्णन किए गये हैं। साथ ही इसमें हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दो असुरों के वध का भी वर्णन किया गया है।

तात्पर्य : विभिन्न अवतार भगवान् कृष्ण या गोविन्द के अंश हैं—

अद्वैतच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।

वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो आदि पुरुष हैं—अद्वैत, अच्युत तथा अनादि हैं। यद्यपि वे अनन्त रूपों में विस्तार करते हैं, तो भी वे आदि हैं। यद्यपि वे सबसे प्राचीन पुरुष हैं फिर भी वे सदा नवयुवक जैसे प्रतीत होते हैं। भगवान् ऐसे नित्य, आनन्दमय तथा सर्वज्ञ रूप जैसे वेदों के शैक्षणिक ज्ञान से नहीं समझे जा सकते, किन्तु वे शुद्ध अनन्य भक्तों के लिए सदैव प्रकट होते हैं।” (ब्रह्म-संहिता ५.३३) ब्रह्म-संहिता में अवतारों का वर्णन है। निस्सन्देह, समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में अवतारों का वर्णन हुआ है। कोई भी मनुष्य अवतार नहीं बन सकता यद्यपि कलियुग में यह फैशन जैसा हो गया है। चूँकि शास्त्रों में अवतारों का वर्णन है, अतएव किसी बनावटी अवतार को स्वीकार करने का खतरा मोल लेने के पूर्व शास्त्रों को देखना चाहिए। शास्त्रों में सर्वत्र कहा गया है कि कृष्ण आदि भगवान् हैं और उनके असंख्य अवतार हैं। ब्रह्म-संहिता में अन्यत्र कहा गया है—*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*—राम, नृसिंह तथा अन्य अनेक एक के बाद एक भगवान् के अंश हैं। कृष्ण के बाद बलराम, बलराम के बाद संकर्षण और तब अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, नारायण तब फिर पुरुष अवतार—महा विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु आते हैं। ये सभी अवतार हैं।

मनुष्यों को इन अवतारों के विषय में सुनना चाहिए। ऐसे अवतारों के वर्णन *अवतार कथाएँ* कहलाती हैं। इन कथाओं का श्रवण तथा कीर्तन पूर्णतया पवित्र होता है। *शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः*। जो इन्हें सुनता तथा इनका कीर्तन करता है, वह पुण्य बन सकता है।

जब भी अवतारों का प्रसंग आता है, तो धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना होती है और कृष्ण के विरोधी असुर मारे जाते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में दो उद्देश्यों से फैल रहा है—श्री भगवान् के रूप में कृष्ण की स्थापना करना तथा जो मिथ्या ही अपने को अवतार कहते हैं उनका वध करना। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारकों को अपने मन में यह संकल्प बड़ी सावधानी से पालन करना चाहिए और उन असुरों का वध करना चाहिए जो बड़ी ही निपुणता से भगवान् कृष्ण को अपमानित करते हैं। यदि हम नृसिंहदेव तथा प्रह्लाद महाराज की शरण ले लें तो कृष्ण के विरोधी असुरों को मारना और इस तरह पनः कृष्ण वर्चस्व को स्थापित करना आसान हो जायगा। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—कृष्ण परमेश्वर हैं, आदि भगवान् हैं। प्रह्लाद महाराज हमारे गुरु हैं और कृष्ण हमारे

आराध्य ईश हैं। जैसाकि चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है— गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज। यदि हम पर प्रह्लाद महाराज और उनके साथ नृसिंहदेव की कृपा हो जाये तो हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन अत्यधिक सफल हो जायेगा।

असुर हिरण्यकशिपु के पास स्वयं ईश्वर बनने का प्रयास करनेके अनेक साधन थे, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने अनेक प्रकार से प्रताड़ित किए जाने और धमकाए जाने पर भी अपने शक्तिशाली पिता को ईश्वर मानने से बिल्कुल इनकार कर दिया। हमें प्रह्लाद महाराज के चरणचिह्नों पर चलते हुए ऐसे सारे धूर्तों को अस्वीकार करना होगा जो अपने को ईश्वर कहते हैं। हमें कृष्ण तथा उनके अवतारों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ।  
भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथार्थ्यं चास्य वै हरेः ॥ ४३ ॥  
सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ।  
परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

प्रह्लादस्य—प्रह्लाद महाराज की; अनुचरितम्—विशेषताएँ (पढ़कर या कार्यकलापों का वर्णन करके समझी गई); महा-भागवतस्य—महान् भक्त की; च—भी; भक्तिः—भगवान् की भक्ति; ज्ञानम्—आध्यात्म का पूर्णज्ञान (ब्रह्मा, परमात्मा तथा भगवान्); विरक्तिः—भौतिक संसार से वैराग्य; च—भी; याथार्थ्यम्—उन्हें सही सही समझने के लिए; च—तथा; अस्य—इसका; वै—निस्सन्देह; हरेः—सदैव भगवान् के सन्दर्भ में; सर्ग—सृजन; स्थिति—पालन; अप्यय—तथा संहार का; ईशस्य—स्वामी (भगवान्) का; गुण—दिव्य गुण तथा ऐश्वर्य; कर्म—तथा कार्यकलापों का; अनुवर्णनम्—परम्परा के भीतर वर्णन (अनु का अर्थ है 'पश्चात्'। अधिकारी व्यक्ति पूर्व आचार्यों का पालन करते हैं, वे कोई नई चीज नहीं बनाते); पर-अवरेषाम्—देवता तथा असुर नामक विभिन्न प्रकार के जीवों का; स्थानानाम्—विभिन्न लोकों या रहने के स्थानों का; कालेन—समय आने पर; व्यत्ययः—हर वस्तु का संहार; महान्—यद्यपि महान्।

यह कथा महाभागवत प्रह्लाद महाराज के गुणों, उनकी दृढ़ भक्ति, उनके पूर्ण ज्ञान तथा भौतिक कल्मष से पूर्ण विरक्ति को बताती है। यह सृजन, पालन तथा संहार के कारणस्वरूप भगवान् का भी वर्णन करती है। प्रह्लाद महाराज ने अपनी स्तुतियों में भगवान् के दिव्य गुणों के साथ ही यह भी बताया कि किस तरह देवताओं तथा असुरों के आवास भगवान् के निर्देश मात्र से ध्वस्त हो जाते हैं चाहे वे भौतिक ऐश्वर्य से कितने ही भरे व्यक्तियों न हो।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत विभिन्न भक्तों के भगवान् की सेवा से सम्बन्धित चरित्रों के वर्णनों से ओत-प्रोत है। यह वैदिक वाङ्मय भागवत कहलाता है, क्योंकि इसमें भगवान् तथा उनके भक्त का वर्णन है। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने से मनुष्य कृष्ण के विज्ञान, भौतिक तथा

आध्यात्मिक जगतों की प्रकृति तथा जीवन-लक्ष्य को पूर्णरूपेण समझ सकता है। *श्रीमद्भागवतम् अमलं पुराणम्*। *श्रीमद्भागवत* निष्कलंक वैदिक वाङ्मय है, जैसाकि हम *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में ही बतला चुके हैं। अतः *श्रीमद्भागवत* को समझने मात्र से ही हम भक्तों के कार्यकलापों, असुरों के कार्यों, स्थायी तथा नश्वर धामों के विज्ञान को समझ सकते हैं। *श्रीमद्भागवत* के माध्यम से हर बात भली-भाँति ज्ञात हो जाती है।

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ।

आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

धर्मः—धार्मिक सिद्धान्त; भागवतानाम्—भक्तों का; च—तथा; भगवान्—भगवान्; येन—जिससे; गम्यते—समझे जा सकते हैं; आख्याने—कथा में; अस्मिन्—इस; समाम्नातम्—पूर्णतया वर्णित है; आध्यात्मिकम्—अध्यात्म; अशेषतः—किसी भेदभाव के बिना।

धर्म के जिन सिद्धान्तों से भगवान् को वास्तव में समझा जा सकता है, वह भागवत धर्म कहलाता है। अतएव इस कथा में इन सिद्धान्तों का समावेश होने से वास्तविक अध्यात्म का भली-भाँति वर्णन हुआ है।

तात्पर्य : धर्म के सिद्धान्तों द्वारा मनुष्य भगवान्, ब्रह्म (निर्विशेष रूप) तथा परमात्मा को समझ सकता है। जब वह इन सिद्धान्तों में पूर्णतया परिचित हो जाता है, तो वह भक्त बन जाता है और *भागवत धर्म* सम्पन्न करता है। शिष्य-परम्परा पद्धति के गुरु प्रह्लाद महाराज ने उपदेश दिया है कि इस *भागवत धर्म* की शिक्षा विद्यार्थियों को प्रारम्भ से दी जाये ( *कौमार आचरेत प्राज्ञो धर्मान् भागवतान् इह* )। शिक्षा का असली उद्देश्य भगवान् के विज्ञान को समझना है। *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः*। मनुष्य को भगवान् विष्णु तथा उनके विभिन्न अवतारों के विषय में ही सुनना एवं गुणगान मात्र करना चाहिए। अतएव प्रह्लाद महाराज तथा नृसिंहदेव की तत्सम्बन्धी इस कथा में आध्यात्मिक दिव्य विषयों का भली-भाँति वर्णन हुआ है।

य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ।

कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ



यः—जो कोई; एतत्—इस; पुण्यम्—पवित्र; आख्यानम्—कथा को; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; वीर्यं—परम शक्ति; उपबृंहितम्—के वर्णन से युक्त; कीर्तयेत्—कीर्तन करता या दुहराता है; श्रद्धया—अतीव श्रद्धापूर्वक; श्रुत्वा—उचित स्रोत से सुन कर; कर्म-पाशैः—सकाम कर्मों के बन्धन से; विमुच्यते—छूट जाता है।

जो कोई भगवान् विष्णु की सर्वव्यापकता विषयक इस कथा को सुनता है और इसका कीर्तन करता है, वह निश्चित रूप से भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां  
 दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ।  
 दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं  
 श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—यह कथा; यः—जो कोई; आदि-पुरुषस्य—आदि भगवान् की; मृग-इन्द्र-लीलाम्—नरसिंह की लीलाओं को; दैत्य-इन्द्र—असुरों का राजा; यूथ-प—हाथी के समान बलिष्ठ; वधम्—वध; प्रयतः—ध्यानपूर्वक; पठेत—पढ़ता है; दैत्य-आत्म-जस्य—असुरपुत्र प्रह्लाद महाराज का; च—भी; सताम्—श्रेष्ठ भक्तों में; प्रवरस्य—श्रेष्ठतम; पुण्यम्—पवित्र; श्रुत्वा—सुनकर; अनुभावम्—कार्यकलाप; अकुतः-भयम्—जहाँ किसी समय तथा कहीं भी कोई भय नहीं है; एति—पहुँचता है; लोकम्—आध्यात्मिक जगत में।

प्रह्लाद महाराज भक्तों में सर्वश्रेष्ठ थे। जो कोई प्रह्लाद महाराज के कार्यकलापों, हिरण्यकशिपु के वध तथा भगवान् नृसिंहदेव की लीलाओं से सम्बद्ध इस कथा को अत्यन्त मनोयोग से सुनता है, वह निश्चयपूर्वक आध्यात्मिक जगत में पहुँचता है जहाँ कोई चिन्ता नहीं रहती है।

यूयं नृलोके बत भूरिभागा  
 लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।  
 येषां गृहानावसतीति साक्षाद्  
 गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ४८ ॥

#### शब्दार्थ

यूयम्—तुम सभी ( पाण्डव ); नृ-लोके—इस भौतिक जगत में; बत—फिर भी; भूरि-भागाः—अत्यन्त भाग्यशाली; लोकम्—सारे लोकों को; पुनानाः—पवित्र कर सकने वाले; मुनयः—बड़े-बड़े साधु पुरुष; अभियन्ति—सदैव देखने आते हैं; येषाम्—जिनके; गृहान्—घर में; आवसति—रहते हैं; इति—इस प्रकार; साक्षात्—प्रत्यक्ष; गूढम्—परम गोपनीय; परम् ब्रह्म—परब्रह्म, परमेश्वर; मनुष्य-लिङ्गम्—मनुष्य की भाँति प्रकट होकर।

नारद मुनि ने आगे कहा : हे महाराज युधिष्ठिर, तुम सभी ( पाण्डव ) अत्यन्त भाग्यशाली हो, क्योंकि भगवान् कृष्ण तुम्हारे महल में सामान्य मनुष्य की भाँति निवास करते हैं। बड़े-बड़े साधु पुरुष इसे भली-भाँति जानते हैं इसीलिए वे निरन्तर इस घर में आते रहते हैं।

**तात्पर्य :** प्रह्लाद महाराज के कार्यकलापों का श्रवण करने के पश्चात् शुद्ध भक्त को उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करने के लिए उत्सुक होना चाहिए। किन्तु ऐसे भक्त को यह सोचकर निराशा हो सकती है कि प्रत्येक भक्त प्रह्लाद महाराज के स्तर को प्राप्त नहीं कर सकता। यह शुद्ध भक्त का स्वभाव है; वह अपने आपको सबसे निम्न, अयोग्य तथा अकुशल समझता है। इस प्रकार प्रह्लाद महाराज के कार्यकलापों की कथा सुनकर प्रह्लाद जैसी ही भक्ति के स्तर पर रहने वाले महाराज युधिष्ठिर ने अपने विनम्र स्थिति के बारे में विनयवश अपने विषय में भी ऐसा ही सोचते रहे होंगे, किन्तु नारद मुनि महाराज युधिष्ठिर के मन की बात ताड़ गये, अतएव उन्होंने यह कहकर उन्हें तुरंत प्रोत्साहित किया कि पाण्डव भी कम भाग्यशाली नहीं हैं; वे प्रह्लाद महाराज के ही समान हैं, क्योंकि यद्यपि नृसिंहदेव प्रह्लाद के लिए प्रकट हुए थे तो भगवान् कृष्ण अपने आदि रूप में पाण्डवों के साथ रह रहे थे। यद्यपि कृष्ण की योगमाया के वशीभूत हुए पाण्डव अपनी भाग्यशाली स्थिति के विषय में सोच भी नहीं सकते थे, किन्तु नारद मुनि समेत प्रत्येक साधु व्यक्ति इसे समझता था, इसीलिए वे निरन्तर महाराज युधिष्ठिर के पास आते रहते थे।

कोई भी शुद्ध भक्त जो निरन्तर कृष्णभावनाभावित है, वह स्वभावतः अत्यन्त भाग्यशाली है। नृलोके शब्द का अर्थ है “भौतिक जगत के भीतर” जिससे सूचित होता है कि पाण्डवों से भी पहले अनेकानेक भक्त हो चुके हैं—यथा यदुवंश के वंशज तथा वसिष्ठ, मरीचि, कश्यप, ब्रह्मा तथा शिवजी जो अत्यन्त भाग्यशाली थे। किन्तु पाण्डव इन सबों से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनके साथ साक्षात् कृष्ण लगातार रहते हैं। इसलिए नारद मुनि ने विशेष रूप से उल्लेख किया कि इस भौतिक जगत (नृलोके) में पाण्डव अत्यन्त भाग्यशाली हैं।

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य-

कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।

प्रियः सुहृदः खलु मातुलेय

आत्मारहणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वह ( भगवान् कृष्ण ); वा—भी; अयम्—यह; ब्रह्म—निराकार ब्रह्म ( जो कृष्ण का तेज है ); महत्—महापुरुषों के द्वारा; विमृग्य—खोजा जाकर; कैवल्य—एकत्व; निर्वाण-सुख—दिव्य सुख का; अनुभूतिः—व्यावहारिक अनुभव का स्रोत; प्रियः—अत्यधिक प्रिय; सुहृत्—शुभचिन्तक; वः—तुम्हारा; खलु—निस्सन्देह; मातुलेयः—मामा का पुत्र; आत्मा—शरीर तथा

आत्मा के ही समान; अर्हणीयः—पूज्य ( भगवान् होने से ); विधि-कृत्—सन्देशवाहक की तरह ( फिर भी वह तुम्हारी सेवा करता है ); गुरुः—तुम्हारा परम सलाहकार; च—भी ।

निराकार ब्रह्म साक्षात् कृष्ण हैं, क्योंकि कृष्ण निराकार ब्रह्म के स्रोत हैं। वे बड़े-बड़े साधु पुरुषों द्वारा तलाश किये जाने वाले दिव्य आनन्द के उत्स हैं फिर भी परम पुरुष तुम्हारे सर्वाधिक प्रिय मित्र तथा चिरन्तन सुहृद् हैं और तुम्हारे मामा के पुत्ररूप में तुमसे घनिष्ठतः सम्बन्धित हैं। निस्सन्देह, वे सदैव तुम्हारे शरीर तथा आत्मा के सदृश हैं। वे पूज्य हैं फिर भी वे तुम्हारे सेवक की तरह और कभी-कभी तुम्हारे गुरु की तरह कार्य करते हैं।

तात्पर्य : परम सत्य के विषय में सदा ही मतभेद रहा है। अध्यात्मवादियों के एक वर्ग का मत है कि परम सत्य निराकार है और दूसरा वर्ग उन्हें पुरुष मानता है। *भगवद्गीता* में परम सत्य को परम पुरुष के रूप में स्वीकार किया गया है। निस्सन्देह, *भगवद्गीता* में परम पुरुष भगवान् कृष्ण साक्षात् उपदेश देते हैं—*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्, मत्तः परतरं नान्यत्*—निराकार ब्रह्म मेरा आंशिक प्राकट्य है और मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। वही कृष्ण भगवान् पाण्डवों के परम मित्र तथा सम्बन्धी की भूमिका निभाते हैं। कभी-कभी तो वे धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन तक पाण्डवों का पत्र ले जाने वाले सेवक की भी भूमिका निभाते हैं। चूँकि कृष्ण पाण्डवों के शुभचिन्तक थे, अतएव उन्होंने अर्जुन का गुरु बनकर *गुरु* की भी भूमिका अदा की। अर्जुन ने कृष्ण को अपना गुरु स्वीकार किया था ( *शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्* ) और कभी-कभी कृष्ण उसे प्रताड़ित भी करते थे। उदाहरणार्थ, भगवान् ने कहा—*अशोच्यान् अन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे*—विद्वान् जैसे शब्द बोलते हुए तुम उसके लिए शोक कर रहे हो जो उसके योग्य नहीं है। भगवान् ने यह भी कहा—*कुतस्त्वां कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्*—हे अर्जुन! यह सारी गन्दगी तुममें कहाँ से आई। पाण्डवों तथा कृष्ण के बीच ऐसी घनिष्ठता थी। इसी तरह से भगवान् का शुद्ध भक्त सभी प्रकार के संकट में भगवान् के साथ रहता है; उस की जीवन पद्धति कृष्ण ही हैं। यह श्री नारद मुनि का आधिकारिक कथन है।

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी

रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः

प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ५० ॥

**शब्दार्थ**

न—नहीं; यस्य—जिसका; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भव—शिवजी; पद्म-ज—ब्रह्मा ( कमल से उत्पन्न ); आदिभिः—उनके तथा अन्यो के द्वारा भी; रूपम्—रूप; धिया—ध्यान के द्वारा भी; वस्तुतया—मूल रूप से; उपवर्णितम्—वर्णित तथा अनुभूत; मौनेन—समाधि या गहन ध्यान द्वारा; भक्त्या—भक्ति द्वारा; उपशमेन—त्याग द्वारा; पूजितः—पूजित; प्रसीदताम्—प्रसन्न हो; एषः—यह; सः—वह; सात्वताम्—महान् भक्तों का; पतिः—स्वामी ।

शिव तथा ब्रह्माजी जैसे महापुरुष भगवान् कृष्ण के सत्य का सही-सही वर्णन नहीं कर पाये। वे भगवान् हम पर प्रसन्न हों जो सदा समस्त भक्तों के रक्षक रूप में उन महान् सन्तों द्वारा पूजे जाते हैं, जो मौन, ध्यान, भक्ति तथा त्याग का व्रत लिए रहते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि भिन्न-भिन्न लोग परम सत्य की खोज विभिन्न विधियों से करते हैं, तो भी वे अचिन्त्य बने रहते हैं। किन्तु पाण्डवों, गोपियों, गोपों, माता यशोदा, नन्द महाराज तथा वृन्दावन के सभी वासियों को भगवत्-प्राप्ति के लिए ध्यान की परम्परागत विधियों का अभ्यास नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे इन सबों के साथ सुख-दुख की सभी स्थितियोंमें रहते हैं। इसीलिए नारद जैसा साधु पुरुष अध्यात्मवादियों एवं शुद्ध भक्तों में अन्तर को जानते हुए भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि वे उस पर प्रसन्न हों।

स एष भगवान् राजन्व्यतनोद्विहतं यशः ।

पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥ ५१ ॥

**शब्दार्थ**

सः एषः भगवान्—वही भगवान् कृष्ण जो परब्रह्म हैं; राजन्—हे राजा; व्यतनोत्—विस्तार किया; विहतम्—खोया; यशः—कीर्ति में; पुरा—प्राचीन काल में; रुद्रस्य—शिवजी की ( जो देवताओं में सर्वाधिक शक्तिमान हैं ); देवस्य—देवता का; मयेन—मय नामक असुर द्वारा; अनन्त—असीम; मायिना—तकनीकी ज्ञान से युक्त ।

हे राजा युधिष्ठिर, बहुत समय पहले तकनीकी ज्ञान में अत्यन्त कुशल मय नामक दानव ने शिवजी के यश में बड़ा लगाया। उस स्थिति में भगवान् कृष्ण ने शिवजी की रक्षा की थी।

तात्पर्य : शिवजी महादेव अर्थात् सर्वश्रेष्ठ देवता कहलाते हैं। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि यद्यपि ब्रह्माजी को भगवान् के यश का पता नहीं था, किन्तु शिवजी को पता था। इस ऐतिहासिक घटना से सिद्ध होता है कि शिवजी परब्रह्म कृष्ण से शक्ति प्राप्त करते हैं।

**राजोवाच**

कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहञ्जगदीशितुः ।

यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णोनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥

**शब्दार्थ**

राजा उवाच—राजा ने कहा; कस्मिन्—किस कारण से; कर्मणि—किन कार्यों से; देवस्य—महादेव ( शिव ) के; मयः—मय दानव; अहन्—नष्ट करना चाहता था; जगत्-ईशितुः—शिव की, जो भौतिक शक्ति का नियंत्रण करते हैं और दुर्गा देवी के पति हैं; यथा—जिस प्रकार; च—तथा; उपचिता—पुनः विस्तार किया; कीर्तिः—कीर्ति; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; अनेन—इस; कथ्यताम्—कृपया कह सुनायें।

महाराज युधिष्ठिर ने पूछा : मय दानव ने किस कारण से शिवजी की कीर्ति नष्ट की? कृष्ण ने किस तरह शिव जी की रक्षा की? और किस तरह उनकी कीर्ति का पुनः विस्तार किया? कृपया इन घटनाओं को कह सुनायें।

श्रीनारद उवाच

निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ।

मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५३ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद मुनि ने कहा; निर्जिताः—हार कर; असुराः—सारे असुर; देवैः—देवताओं से; युधि—लड़ाई में; अनेन—कृष्ण द्वारा; उपबृंहितैः—शक्ति बढ़ाकर; मायिनाम्—सारे असुरों की; परम-आचार्यम्—सर्वश्रेष्ठ तथा महानतम; मयम्—मय दानव की; शरणम्—शरण; आययुः—ग्रहण की।

नारद मुनि ने कहा : जब परम देवताओं ने जो भगवान् कृष्ण की दया से सदा शक्तिशाली बने रहते हैं असुरों से युद्ध किया तो असुर हार गये, अतएव उन्होंने महानतम असुर मय दानव की शरण ग्रहण की।

स निर्माय पुरस्तिस्त्रो हैमीरौप्यायसीविभुः ।

दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥

ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरानृप ।

स्मरन्तो नाशयां चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वह ( मय दानव ); निर्माय—निर्मित करके; पुरः—बड़े-बड़े आवास; तिस्रः—तीन; हैमी—स्वर्ण से बने; रौप्या—चाँदी से बने; आयसीः—लोहे से बने; विभुः—अत्यधिक शक्तिशाली; दुर्लक्ष्य—अकूत; अपाय-संयोगाः—आने-जाने की गतिविधियाँ; दुर्वितर्क्य—असामान्य; परिच्छदाः—साज-सामग्री से युक्त; ताभिः—उन सबों ( विमान जैसे तीन आवासों ) के द्वारा; ते—वे; असुर-सेना-अन्यः—असुरों के सेनानायक; लोकान् त्रीन्—तीनों लोकों को; स-ईश्वरान्—उनके प्रधान शासकों सहित; नृप—हे राजा युधिष्ठिर; स्मरन्तः—स्मरण करते हुए; नाशयाम् चक्रुः—विनाश करने लगा; पूर्व—पहले की; वैरम्—शत्रुता; अलक्षिताः—अदृश्य रहकर।

असुरों के महान् नायक मय दानव ने तीन अदृश्य आवास तैयार किये और उन्हें असुरों को सौंप दिया। ये तीनों आवास सोने, चाँदी तथा लोहे के बने विमानों जैसे थे और उनमें अपूर्व साज-सामग्री थी। हे राजा युधिष्ठिर, इन तीनों आवासों के कारण असुरों के सेनानायक देवताओं

से अदृश्य हो गए थे। इस अवसर का लाभ उठाकर तथा अपनी पूर्व शत्रुता का स्मरण करते हुए असुरगण तीनों लोकों—ऊर्ध्व, मध्य तथा अधो लोकों—का विनाश करने लगे।

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं नताः ।  
त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ते—वे ( देवगण ); स—ईश्वराः—अपने शासकों समेत; लोकाः—सारे लोक; उपासाद्य—निकट जाकर; ईश्वरम्—शिवजी को; नताः—शरणागत होकर गिर पड़े; त्राहि—रक्षा करें; नः—हमारी; तावकान्—आपके होकर भी अत्यन्त भयभीत; देव—हे प्रभु; विनष्टान्—प्रायः विनष्ट; त्रिपुर-आलयैः—उन तीनों पुरों में रहने वाले असुरों द्वारा।

तत्पश्चात् जब असुरगण स्वर्गलोकों को तहस-नहस करने लगे तो उन लोकों के शासक शिवजी की शरण में आये और उन्होंने कहा—हे प्रभु, हम तीन लोकों के वासी देवता विनष्ट होने वाले हैं। हम आपके अनुयायी हैं। कृपया हमारी रक्षा करें।

अथानुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः ।  
शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ५७ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अनुगृह्य—उन पर कृपा करके; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; मा—मत; भैष्ट—डरो; इति—इस प्रकार; सुरान्—देवताओं को; विभुः—शिवजी ने; शरम्—बाण; धनुषि—धनुष पर; सन्धाय—चढ़ाकर; पुरेषु—असुरों से युक्त उन तीनों आवासों में; अस्त्रम्—अस्त्र; व्यमुञ्चत—छोड़ा।

अत्यन्त शक्तिशाली एवं समर्थ शिवजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा “डरो मत।” तब उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर असुरों द्वारा निवसित तीनों आवासों की ओर छोड़ा।

ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ।  
यथा मयूखसन्दोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥ ५८ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अग्नि-वर्णाः—अग्नि के समान चमकीले; इषवः—बाण; उत्पेतुः—छोड़े; सूर्य-मण्डलात्—सूर्यमण्डल से; यथा—जिस प्रकार; मयूख-सन्दोहाः—प्रकाश की किरणें; न अदृश्यन्त—देखे नहीं जा सके; पुरः—तीनों आवास; यतः—इसके कारण ( शिवजी के बाणों से घिर कर )।

शिवजी द्वारा छोड़े गये बाण सूर्यमण्डल से निकलने वाली प्रज्वलित किरणों जैसे लग रहे थे। उनसे तीनों आवास-रूपी विमान आच्छादित हो गये जिससे वे दिखने बन्द हो गये।

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ।

तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

तैः—उन ( बाणों ) के द्वारा; स्पृष्टाः—स्पर्श किये जाने या आक्रमण किये जाने से; व्यसवः—निष्प्राण; सर्वे—सारे असुर; निपेतुः—गिर पड़े; स्म—पूर्वकाल में; पुर—ओकसः—उपर्युक्त तीनों आवासरूपी विमानों के निवासी होने के कारण; तान्—उन सबों को; आनीय—लाकर; महा-योगी—महान् योगी; मयः—मय दानव ने; कूप-रसे—अमृत के कुएँ में ( जिसे महायोगी मय ने बनाया था ); अक्षिपत्—रख दिया।

शिवजी के सुनहरे बाणों से आक्रमण किये जाने से उन तीनों आवासों के निवासी असुर निष्प्राण होकर गिर पड़े। तब परम योगी मय दानव ने उन्हें अपने द्वारा निर्मित अमृत कूप में लाकर डाल दिया।

तात्पर्य : सामान्यतया असुरगण अपनी योगशक्ति के कारण अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं। किन्तु जैसाकि भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (६.४७) में कहते हैं—

*योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।*

*श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥*

“समस्त योगियों में से जो योगी अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक मेरी शरण में रहता है और भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करता है, वह योग में घनिष्ठतापूर्वक मुझसे युक्त रहता है और सर्वोच्च होता है।” योगी का असली उद्देश्य भगवान् कृष्ण पर अपने ध्यान को पूरी तरह केन्द्रित करना और सदैव उन्हीं का चिन्तन करना है ( *मद्गतेनान्तरात्मना* )। ऐसी सिद्धि-लाभ के लिए मनुष्य को *हठ योग* करना होता है और तब इस योग से अभ्यासकर्ता को किञ्चित् अपूर्व योगशक्ति प्राप्त होती है। किन्तु असुरगण कृष्ण के भक्त न बनकर इस *योगशक्ति* का उपयोग अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए करते हैं। उदाहरणार्थ, यहाँ पर मय दानव को *महायोगी* कहा गया है किन्तु उसका कार्य असुरों की सहायता करना था। आजकल देखा जाता है कि कुछ ऐसे योगी हैं, जो भौतिकतावादियों को इन्द्रियों की तृप्ति कराते हैं और ऐसे वञ्चक हैं, जो अपने आपको ईश्वर के रूप में विज्ञापित करते हैं। मय दानव ऐसा ही व्यक्ति था, जो असुरों का देवता था और वह कुछ आश्चर्यजनक करामातें कर सकता था जिनमें से एक का वर्णन यहाँ हुआ है— उसने अमृत से पूर्ण एक कुँआ बनाया और असुरों को लाकर उसी में डाल दिया। यह अमृत *मृत-सञ्जीवयितरि* कहलाता था, क्योंकि इससे मृत शरीर जीवित हो सकता था। *मृतसञ्जीवयितरि* एक आयुर्वेदिक दवा भी है। यह एक प्रकार का आसव है, जो मरणासन्न व्यक्ति में जीवन ला देता है।

सिद्धामृतसरस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ।  
उत्तस्थुर्मैघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥

**शब्दार्थ**

सिद्ध-अमृत-रस-स्पृष्टा:—शक्तिशाली योग के अमृत का स्पर्श पाकर असुरगण; वज्र-सारा:—जिनके शरीर वज्र के समान हो गये हैं; महा-ओजसः—अत्यन्त बलिष्ठ; उत्तस्थुः—फिर से उठ खड़े हो गये; मेघ-दलना:—बादलों को चीरकर जाने वाले; वैद्युता:—बिजली ( जो बादल को चीर देती है ); इव—सदृश; वह्नयः—अग्नि जैसे ।

असुरों के मृत शरीर इस अमृत का स्पर्श करते ही वज्र के समान अभेद्य हो गये। महान् शक्ति प्राप्त करने के कारण वे बादलों को विदीर्ण करने वाली बिजली की भाँति उठ खड़े हो गये।

विलोक्य भग्नसङ्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ।  
तदायं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६१ ॥

**शब्दार्थ**

विलोक्य—देखकर; भग्न-सङ्कल्पम्—निराश; विमनस्कम्—अत्यन्त अप्रसन्न, अन्यमनस्क; वृष-ध्वजम्—शिवजी को; तदा—उस समय; अयम्—यह; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—विष्णु ने; तत्र—अमृत कूप के पास; उपायम्—उपाय ( रोकने का ); अकल्पयत्—विचार किया ।

शिवजी को अत्यन्त दुखी तथा निराश देखकर भगवान् विष्णु ने विचार किया कि मय दानव द्वारा उत्पन्न इस उत्पात को किस प्रकार रोका जाये।

वत्सश्चासीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ।  
प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ ६२ ॥

**शब्दार्थ**

वत्सः—बछड़ा; च—भी; आसीत्—बन गये; तदा—उस समय; ब्रह्मा—ब्रह्माजी; स्वयम्—खुद; विष्णुः—भगवान् विष्णु; अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; गौः—गाय; प्रविश्य—घुसकर; त्रि-पुरम्—तीनों निवासस्थानों को; काले—दोपहर में; रस-कूप-अमृतम्—कुएँ के अमृत को; पपौ—पी लिया ।

तब ब्रह्माजी बछड़ा और भगवान् विष्णु गाय बन गये और दोपहर के समय आवासों में प्रवेश करके वे कुएँ का सारा अमृत पी गये।

तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ।  
तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ।  
स्मयन्विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥ ६३ ॥

**शब्दार्थ**

ते—वे; असुराः—असुरगण; हि—निस्सन्देह; अपि—यद्यपि; पश्यन्तः—देखते हुए ( कि बछड़ा तथा गाय अमृत पी रहे हैं ); न—नहीं; न्यषेधन्—मना किया; विमोहिताः—मोह-ग्रस्त होने से; तत् विज्ञाय—यह भली-भाँति जानकर; महा-योगी—महान्



योगी मय दानव ने; रस-पालान्—अमृत की रक्षा करने वाले असुरों से; इदम्—यह; जगौ—कहा; स्मयन्—मोहग्रस्त हुए; विशोकः—बहुत अप्रसन्न न होते हुए; शोक-आर्तान्—अत्यधिक पश्चात्ताप करते; स्मरन्—स्मरण करते हुए; दैव-गतिम्—आध्यात्मिक शक्ति को; च—भी; ताम्—उस।

असुरों ने बछड़े तथा गाय को देखा लेकिन भगवान् द्वारा उत्पन्न मोह शक्ति के कारण वे उन्हें रोक नहीं पाये। महायोगी मय असुर को पता चल गया कि बछड़ा तथा गाय अमृत पी रहे हैं और वह यह समझ गया कि यह अदृश्य दैवी शक्ति के कारण हो रहा है। इस प्रकार वह पश्चात्ताप करते हुए असुरों से बोला।

देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ।

आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ ६४ ॥

#### शब्दार्थ

देवः—देवता; असुरः—असुर; नरः—मनुष्य; अन्यः—अथवा कोई दूसरा; वा—या तो; न—नहीं; ईश्वरः—परमनियन्ता; अस्ति—है; इह—इस संसार में; कश्चन—कोई; आत्मनः—अपना; अन्यस्य—दूसरे का; वा—अथवा; दिष्टम्—भाग्य; दैवेन—भगवान् द्वारा प्रदत्त; अपोहितुम्—मिटा सकने के लिए; द्वयोः—दोनों का।

मय दानव ने कहा : जो अपने, पराये अथवा दोनों के भाग्य में भगवान् द्वारा निश्चित कर दिया गया है उसे कोई भी कहीं भी मिटा नहीं सकता चाहे वह देवता, असुर, मनुष्य या अन्य कोई क्यों न हो।

तात्पर्य : भगवान् एक है—कृष्ण या विष्णुतत्त्व। कृष्ण अपना विस्तार (स्वांश) विष्णु-तत्त्व के रूप में करते हैं, जो सबों का नियामक है। मय दानव ने कहा “चाहे मैं योजना बनाऊँ, या तुम या हम मिलकर योजना बनायें, होना वही है, जो भगवान् ने योजना बना रखी है। उनके आदेश के बिना किसी की भी योजना सफल नहीं होगी।” हम अपनी कितनी ही योजनाएँ क्यों न बना लें भगवान् विष्णु की अनुमति के बिना वे कभी भी सफल नहीं होंगी। सभी प्रकार के जीवों द्वारा लाखों योजनाएँ बनाई जाती हैं, किन्तु भगवान् की अनुमति के बिना वे सभी व्यर्थ हैं।

अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यधात् ।

धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ ६५ ॥

रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्मशरादि यत् ।

सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ ६६ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; असौ—वह ( भगवान् कृष्ण ); शक्तिभिः—अपनी शक्तियों से; स्वाभिः—निजी; शम्भोः—शिवजी की; प्राधानिकम्—अवयव; व्यधात्—उत्पन्न किया; धर्म—धर्म; ज्ञान—ज्ञान; विरक्ति—वैराग्य; ऋद्धि—ऐश्वर्य; तपः—तपस्या; विद्या—विद्या; क्रिया—कार्यकलाप; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; रथम्—रथ को; सूतम्—सारथी को; ध्वजम्—झंडे को; वाहान्—हाथी-घोड़ों को; धनुः—धनुष; वर्म—ढाल; शर-आदि—बाण इत्यादि; यत्—प्रत्येक आवश्यक वस्तु से; सन्नद्धः—संयुक्त; रथम्—रथ पर; आस्थाय—आसीन होकर; शरम्—बाण; धनुः—धनुष पर; उपाददे—चढ़ाया, जोड़ा।

नारद मुनि ने आगे कहा—तत्पश्चात् कृष्ण ने शिवजी को अपनी निजी शक्ति से, जो धर्म, ज्ञान, त्याग, ऐश्वर्य, तपस्या, विद्या तथा कर्म से युक्त थी, सभी प्रकार की साज-सामग्री से—यथा रथ, सारथी, ध्वजा, घोड़े, हाथी, धनुष, ढाल तथा बाण से संयुक्त कर दिया। इस तरह से संयुक्त होकर शिव जी अपने धनुष-बाण द्वारा असुरों से लड़ने के लिए रथ पर आसीन हुए।

तात्पर्य : जैसाकि श्रीमद्भागवत ( १२.१३.१६ ) में कहा गया है—वैष्णवानां यथा शम्भुः—शिवजी वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। निस्सन्देह, वे वैष्णव दर्शन के बारह महाजनों में से एक हैं ( स्वयम्भून्नारदः शम्भुः कुमारः मनुः... )। भगवान् कृष्ण सभी तरह से अपने समस्त महाजनों तथा भक्तों की सहायता करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं ( कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति )। यद्यपि शिवजी अत्यन्त शक्तिशाली थे किन्तु वे असुरों से पराजित हो गये; अतएव वे खिन्न एवं निराश थे। किन्तु भगवान् के प्रमुख भक्त होने के कारण स्वयं भगवान् ने उन्हें युद्ध की सारी सामग्री से युक्त किया। अतएव भक्त को चाहिए कि वह भगवान् की सेवा निष्ठापूर्वक करे। शत्रु से सदैव भक्त की रक्षा करने तथा आवश्यकता पडने पर उसे शत्रु से युद्ध के लिए युक्त करने के लिए भगवान् उसके पीछे रहते हैं। भक्तों के लिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार करने के लिए ज्ञान या भौतिक उपादानों की कोई कमी नहीं रहती।

शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ।

ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ ६७ ॥

#### शब्दार्थ

शरम्—बाणों को; धनुषि—धनुष पर; सन्धाय—एकसाथ जोड़कर; मुहूर्ते अभिजिति—दोपहर के समय; ईश्वरः—भगवान् शिव; ददाह—अग्नि लगा दी; तेन—उन ( बाणों के द्वारा ); दुर्भेद्या—दुर्भेद्य, जिसको भेद पाना दुष्कर हो; हरः—शिवजी ने; अथ—इस प्रकार से; त्रि-पुरः—असुरों के तीनों निवासस्थान; नृप—हे राजा युधिष्ठिर।

हे राजा युधिष्ठिर, परम शक्तिशाली शिवजी ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाये और दोपहर के समय असुरों के तीनों आवासों में अग्नि लगाकर उन्हें नष्ट कर दिया।

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसङ्कु लाः ।  
 देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ।  
 अवाकिरञ्जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६८ ॥

**शब्दार्थ**

दिवि—आकाश में; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—बज उठीं; विमान—विमानों के; शत—सैकड़ों हजारों; सङ्कु लाः—एकत्र;  
 देव-ऋषि—सारे देवता तथा सन्त; पितृ—पितृलोक के निवासी; सिद्ध—सिद्धलोक के निवासी; ईशाः—सभी महापुरुष; जय  
 इति—‘जय हो’ इस प्रकार उच्चारण किया; कुसुम-उत्करैः—तरह-तरह के फूलों से; अवाकिरन्—शिवजी के ऊपर वर्षा की;  
 जगुः—उच्चारण किया; हृष्टाः—अत्यन्त प्रसन्नता में; ननृतुः—नाचा; च—तथा; अप्सरः-गणाः—स्वर्गलोक की सुन्दरी स्त्रियों  
 ने।

तब आकाश में अपने-अपने विमानों में आसीन उच्चलोकों के निवासियों ने दुन्दुभियाँ  
 बजाईं। देवताओं, ऋषियों, पितरों, सिद्धों तथा विविध महापुरुषों ने शिव जी के ऊपर पुष्प-वर्षा  
 की और जयजयकार की। अप्सराएँ परम प्रमुदित होकर नाचने-गाने लगीं।

एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्त्रो भगवान्युरहा नृप ।  
 ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वं धाम प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥

**शब्दार्थ**

एवम्—इस प्रकार; दग्ध्वा—भस्म करके; पुरः तिस्रः—असुरों के तीनों आवासों (पुरियों) को; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली;  
 पुर-हा—पुरों को नष्ट करने वाला; नृप—हे राजा युधिष्ठिर; ब्रह्म-आदिभिः—ब्रह्माजी तथा अन्य देवताओं द्वारा; स्तूयमानः—  
 पूजित होकर; स्वम्—अपने; धाम—धाम; प्रत्यपद्यत—लौट गये।

हे राजा युधिष्ठिर, इस प्रकार शिवजी त्रिपुरारी कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने असुरों की तीनों  
 पुरियों को भस्म कर दिया था। ब्रह्मा समेत समस्त देवताओं से पूजित होकर शिव जी अपने धाम  
 लौट गये।

एवं विधान्यस्य हरेः स्वमायया  
 विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ।  
 वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरो-  
 लोकिं पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥ ७० ॥

**शब्दार्थ**

एवम् विधानि—इस विधि से; अस्य—कृष्ण की; हरेः—भगवान् की; स्व-मायया—अपनी दिव्य शक्तियों से; विडम्बमानस्य—  
 सामान्य मनुष्य की भाँति कार्य करते हुए; नृ-लोकम्—मानव समाज में; आत्मनः—अपने; वीर्याणि—दिव्य कार्यकलापों की;  
 गीतानि—कथाओं को; ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; जगत्-गुरोः—परम प्रभु का; लोकम्—सारे लोक; पुनानानि—पवित्र करते  
 हुए; अपरम्—और क्या; वदामि किम्—मैं क्या कह सकता हूँ।

यद्यपि भगवान् कृष्ण मनुष्य के रूप में प्रकट हुए थे फिर भी उन्होंने अपनी शक्ति से अनेक  
 असामान्य तथा आश्चर्यजनक लीलाएँ सम्पन्न कीं। उन महान् सन्त पुरुषों द्वारा जो कुछ कहा जा

चुका है उससे भला मैं और अधिक क्या कह सकता हूँ? प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी व्यक्ति से भगवान् के कार्यकलापों के श्रवण मात्र से शुद्ध हो सकता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता तथा अन्य समस्त वैदिक वाङ्मय पूरी तरह बताते हैं कि भगवान् कृष्ण मानव समाज में सामान्य व्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं लेकिन वे विश्व भर के कल्याण के लिए असामान्य कार्य करते हैं। मनुष्य को माया के वशीभूत होकर कृष्ण को सामान्य व्यक्ति नहीं मान लेना चाहिए। जो लोग सचमुच परम सत्य की खोज में रहते हैं, वे यह समझ जाते हैं कि कृष्ण ही सर्वेसर्वा हैं (वासुदेवः सर्वम् इति)। किन्तु ऐसे महापुरुष विरले होते हैं। फिर भी यदि कोई सम्पूर्ण भगवद्गीता यथारूप पढ़े तो कृष्ण को सरलता से समझ सकता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन समस्त विश्व को भगवान् के रूप में कृष्ण से परिचित कराने के लिए प्रयत्नशील है (कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्)। यदि लोग इस आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करें तो उनका मानव जीवन सफल हो जायेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के सातवें स्कंध के अन्तर्गत “भक्त शिरोमणि प्रह्लाद” नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।